प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई

तीसरी आवृत्ति
जुलाई, १९३९

मूल्य चौदह आने

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केळेवाडी, गिरगाँव, बम्बई नं. ४

समर्पण

श्रीमान् पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र

एम० ए०, एलएल० बी०

के

कर-कमलोंमें

—पदुमलाल बख्शी

एक दिन

लाल रणजीतसिंह न रहे। जीवन और मृत्युकी इस लीला-भूमिमें किसीकी मृत्युका समाचार सुनकर कोई क्षुब्ध नहीं होता। कालके गर्भमें अनन्त जीवन-धाराएँ लुप्त होती रहती हैं। तब एक जल-बिन्दुके निपातसे किसका गात्र कम्पित हो सकता है? परन्तु आज मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मानो मुझे वृद्धावस्थाने आकर घेर लिया है। मेरे देखते ही देखते एक-एक कर कितने ही लोग चले गये। न जाने कहाँ, किस लोकमें, एकत्र होकर वे सब मेरी राह देख रहे हैं। क्या कभी उनसे फिर भेंट होगी?

लाल रणजीतसिंह इलाहाबाद आये थे। उन दिनोंमें मैं जैन-बोर्डिङ्गके सामने एक छोटेसे मकानमें रहता था। वहीं लाल साहब आकर ठहर गये। उन्हीं दिनोंमें मेरे दो मित्र भी आये हुए थे। एक थे जगदीश और दूसरे थे महेश। एक साहित्यके आचार्य थे और दूसरे दर्शन-शास्त्रके। प्रतिदिन दोनोंमें विवाद हुआ करता था। लाल साहब उपन्यासोंके प्रेमी थे। उन्हें भी साहित्य-चर्चा पसन्द थी। वे भी एक दिन उसी विवादमें सम्मिलित हो गये। आज यहाँ मैं उसीकी बात लिख रहा हूँ।

सन्ध्या हो गई थी। मैं 'इण्डियन प्रेस'से काम करके घर लौटा। महेश और जगदीश दोनों बैठे बातें कर रहे थे। मेरे आनेपर लाल साहब भी वहीं आकर बैठ गये और महेशसे कहने लगे—मैं आज एक उपन्यास पढ़ रहा था। वह है तो एक विख्यात लेखककी कृति, पर उसे पढ़कर मुझे विशेष प्रसन्नता नहीं हुई। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आधुनिक कथा-साहित्य रससे हीन होता जा रहा है। आजकल उपन्यासोंमें चरित्रोंकी सृष्टिके लिए उतनी चिन्ता नहीं की जाती जितनी चरित्रगत विशेषताका विश्लेषण करनेके लिए की जाती है।

महेशने कहा—पर सत्यके अनुसन्धानमें ही आनन्दकी उपलब्धि होती है और चरित्र-वैचित्र्यका विश्लेषण करनेसे ही हम सत्यको जान सकते हैं।

जगदीशने कहा—यहीं तुम भूल कर रहे हो। मनुष्य-जीवन कोई रासायनिक पदार्थ नहीं है जिसका विश्लेषण कर आप तत्त्व निकाल सकें। मनुष्यको खण्ड खण्ड कर देखनेसे हम कभी उसके जीवनका रहस्य नहीं जान सकते। वह जैसा है हमें ठीक वैसा ही, समग्र भावसे ही, उसपर विचार करना चाहिए। जहाँ जीवनकी सम्पूर्णता है वहीं दृष्टिपात करनेसे हम जीवनका यथार्थ तत्त्व जान सकेंगे। इसलिए, प्राचीन कालमें महत् चरित्रोंकी सृष्टि की जाती थी। पर आजकल उपन्यासोंमें व्यक्तिगत वैचित्र्यको ही स्पष्ट करनेके लिए यत्न किया जाता है।

लाल साहबने कहा—संसारमें छोटे-बड़े सभी तरहके मनुष्य रहते हैं। वे सदैव महत्त्वपूर्ण कार्योंमें निरत नहीं रहते। अधिकांशका जीवन-काल ऐसे ही कार्योंमें व्यतीत होता है जो तुच्छ कहे जाते हैं। मनुष्य अपने जीवनमें सुख-दुःखका अनुभव करता है। कभी वह किसीसे प्रेम करता है तो कभी किसीसे घृणा करता है। काम-क्रोध, लोभ-मोहके चक्रमें वह पड़ा रहता है। मनुष्योंका यह दैनिक जीवन क्या उपेक्षणीय है?

जगदीशने उत्तर दिया—तुच्छ कार्योंमें निरत रहनेपर भी मनुष्य इतना अवश्य अनुभव करता है कि उसका जीवन इतना ही नहीं है। उसके हृदयमें यह विश्वास छिपा रहता है कि वह कुछ और भी है। उस 'कुछ और'को प्राप्त करनेकी वह चेष्टा भी करता है। इसीलिए, वह जब किसीमें किसी प्रकारकी महत्ता देखता है तब वह उसकी ओर आकृष्ट होता है। वह शक्तिकी महत्ताको समझता है, इसीलिए शक्तिका अनुभव करना चाहता है। तभी मनुष्योंमें शक्तिके जो जो प्रतिनिधि होते हैं वे सभी उसकी कल्पनाके विषय हो जाते हैं। यह सच है कि सभी समयमें मनुष्य किसी एकमें ही शक्तिकी पराकाष्ठा या महत्ताका आदर्श नहीं देखता। उसका यह आदर्श बदलता रहता है। परन्तु, इसमें सन्देह नहीं कि महत् भावकी ओर मनुष्योंको अग्रसर करानेके लिए ही साहित्यकी सृष्टि होती है। यदि साहित्यमें केवल चरित्रगत विशेषताओंका ही विश्लेषण किया गया तो उससे हम लोगोंमें कोई महत् भाव नहीं आ सकता।

मोहनने कहा—कथाओंके प्रति मनुष्य-मात्रका जो अनुराग है, उसका कारण यह है कि एक मनुष्य स्वभावतः दूसरेको जानना चाहता है। पहले उसे

कुतूहल होता है, फिर सहानुभूति। असाधारणतासे केवल कुतूहलका उद्दीपन होता है परन्तु सहानुभूतिके लिए साधारण बातें ही चाहिए। इसीलिए, जिन कथाओंमें असाधारण विस्मयकर घटनाओंका विवरण रहता है, उनसे पाठकोंका विनोद भले ही हो, पर उनसे उनके हृदयमें सहानुभूतिका भाव जाग्रत नहीं हो सकता। सच तो यह है कि मनुष्यके चरित्रमें जहाँ दुर्बलता है, वहीं हम लोगोंकी सहानुभूति उत्पन्न होती है। महत्तासे केवल विस्मय, आतङ्क या भक्ति आदि भावोंका उद्रेक भले ही हो, परन्तु पाठक उस महत्ताको अपना नहीं सकता। इसीलिए, जो उच्च कोटिके लेखक हैं, वे अपने पाठकोंको असाधारण घटनाओंके फेरमें नहीं डालना चाहते। वे उन्हें अपने प्रतिदिनके सुख-दुखकी बातें बतलाते हैं। इन्हींसे पाठकोंकी सहानुभूति जाग्रत होती है। अच्छे लेखकोंकी रचनाओंका सबसे अच्छा लक्षण यह है कि उन्हें पढ़ते समय हम तन्मय हो जाते हैं। सत्य सदैव सरल, सुन्दर और साधारण होता है। अतएव, जिनकी रचनाओंमें सत्यकी सरल और सुन्दर छवि आती है, उन्हींके प्रति हमारा अनुराग होता है। जो लोग कथाओंसे केवल कुतूहलोद्दीपन चाहते हैं, उनके लिए सत्यके ये सरल चित्र चित्ताकर्षक भले ही नहीं हों; परन्तु, पाठकोंके हृदयपर प्रभाव ऐसे ही चित्रोंका पड़ता है।

जगदीशने कहा—जब जातिकी शक्ति क्षीण होने लगती है, तभी वह महत्ताकी ओर अग्रसर नहीं होती और तभी वह महत्तामें असाधारणताका अनुभव करती है। जब किसी जातिका उत्थान होता है, तब उसमें एक दैवी शक्ति-सी आ जाती है और तब वह असाधारणताकी प्राप्तिके लिए ही उत्सुक होती है। साधारण बातें उसको बिल्कुल तुच्छ जान पड़ती हैं। सच तो यह है कि इसी कारणसे साहित्यका स्वरूप परिवर्तित होता है। भिन्न भिन्न कालोंमें भिन्न भिन्न आदर्शोंकी सृष्टि होती है। मानव-समाजके उत्थान-पतनके साथ उसके आदर्श भी उच्च कोटि अथवा निम्न कोटिके होते हैं। वाल्मीकि और व्यासके युगमें साहित्यका जो आदर्श था, वह कालिदासके युगमें न रहा और न कालिदासका आदर्श मुगल-कालमें रह सका। आधुनिक युगमें दूसरे ही आदर्श ग्रहण किये जाते हैं। इसका एकमात्र कारण यही है कि हिन्दू जाति भिन्न भिन्न अवस्थाओंका अतिक्रमण करती आई है।

कथाओंमें मानव-जीवनकी चिरन्तन घटनाएँ और उसकी उच्चतम अभिलाषाएँ छिपी रहती हैं। सच तो यह है कि इन्हीं कथाओंके द्वारा हम किसी भी जाति-

की जीवन-धाराकी गति निर्दिष्ट कर सकते हैं। प्राचीन कालमें हम सभी देशोंके साहित्यमें विराट् भावोंकी प्रधानता देखते हैं। ये विराट् भाव जातिमें तभी प्रचलित हुए हैं जब उसमें विजयके लिए असीम उत्साह था। प्राचीन कालमें राजा ही मानवीय शक्तिका प्रतिनिधि होता था। वही जातिका गौरव-स्थल था। अतएव, वही जातिका आदर्श था। इसीलिए सभी देशोंके प्राचीन साहित्यमें राजाका ही वर्णन है। राजाको आदर्श मानकर मनुष्योंने उसीमें अपनी समस्त इच्छाओंका चरम परिणाम देखना चाहा। ये राजा सबसे अधिक रूपवान् हैं, उनमें शक्ति भी असाधारण है, मनुष्योंमें जो सर्वोच्च गुण हो सकते हैं, उन सबका वे आगार हैं। यह सब कुछ होनेपर भी इन कथाओंमें किसी भी राजाका जीवन सुखमय नहीं है। बात यह है कि सुख और विलास उन्नतिशील जातिके लिए तुच्छ हैं। वह जानती है कि उन्नतिके मार्गपर कितने ही विघ्न और बाधाएँ हैं,—कितने ही संकट और विपत्तियाँ हैं। उन्हीं सबको अतिक्रमण करनेपर जाति उन्नतिके उच्च शिखरपर पहुँचती है। इसीलिए, प्राचीन कथाओंके सभी नायकोंको विपत्तियोंका सामना करना पड़ा है। उनके शत्रु भी विकट थे। परन्तु, अन्तमें उन्होंने सभी शत्रुओंको पराभूत कर दिया। सङ्कटमें ये नायक कभी धैर्यच्युत नहीं हुए। प्रलोभनमें पड़कर कभी इनकी मति भ्रष्ट नहीं हुई। जब तक किसी जातिका साम्राज्य स्थापित नहीं हुआ तब तक उसमें ऐसे ही आदर्श प्रचलित रहे। उसके बाद धर्मकी महिमासे महीयान व्यक्तिओंके आदर्श स्वीकृत हुए। जब तक धार्मिक भाव प्रबल रहे, तब तक ये धार्मिक आदर्श भी प्रचलित रहे।

आधुनिक युगमें एक ओर संशयावस्था है और दूसरी ओर विलासप्रियता। जो विज्ञान पहले प्रकृतिके रहस्यमय द्वारका उद्घाटन करनेके लिए प्रयत्नशील था, वह अब मानव-जातिकी विलास-सामग्री ढूँढनेमें तत्पर है। न जातिमें वह अदम्य उत्साह है और न वह प्रबल शक्ति। इसीलिए, विराट् चरित्रोंकी सृष्टि लोगोंको असाधारण जान पड़ती है। मार्लो और शेक्सपीयरके नाटकोंमें इँग्लैण्डके विजयोल्लास और दर्पके चित्र हैं। परन्तु आधुनिक नाटकोंमें समाजकी हीनावस्थाके ही चित्र अङ्कित होते हैं।

मोहनने कहा—तुमने जो कहा वह केवल सत्यांश है, सम्पूर्ण सत्य नहीं है। मनुष्योंको अपने जीवनके आरम्भ-कालमें ही अपने पुरुषार्थसे एक अलक्षित

शक्तिसे युद्ध करना पड़ा। पद-पदपर उसने उस अलक्षित शक्तिका अनुभव किया। जब उसने प्रकृतिकी सारी शक्तियोंको वशीभूत कर निर्जन वनमें विशाल नगर स्थापन कर लिये,—ऐसे नगर जहाँ वर्षाके अट्टहास और तड़ित्के उग्र विलासमें भी वह निःशङ्क होकर आत्म-विनोद करता था, ग्रीष्मके प्रचण्ड उत्तापमें वह निर्भय होकर विहार करता था,—तब भी, उस अलक्षित शक्तिके सन्मुख उसे नतमस्तक होना पड़ा। पुराणोंमें तारकासुरकी कथा मनुष्य-जातिके इसी पराभवकी सूचना देती है। तारकासुरने समस्त देवोंको परास्त कर अपने राज्य-भवनमें उनको दास बनाकर रख छोड़ा था। उसकी आज्ञाके विपरीत न तो वायु चल सकती थी, न सूर्य प्रकाश दे सकता था और न इन्द्र वर्षा कर सकता था। परन्तु उसे भी उस दुर्जय शत्रुसे हार खानी पड़ी। उसी शक्तिसे वह पुत्र उत्पन्न

पराभूत होनेपर अदृश्य शक्तिकी महिमाको स्वीकार करती रही। परन्तु, जब उसने अपनी अन्तःशक्तिका अनुभव कर लिया तब बाह्य प्रकृतिकी शक्ति उसे तुच्छ मालूम होने लगी। धर्मकी महिमासे महीयान मध्य युगके सन्तोंने अन्तरात्माकी विभूतिका दर्शन करा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि साहित्यमें अदृष्टवादकी जगह धर्मकी अलौकिकताने प्रधानता प्राप्त कर ली। यह सम्भव है कि वह शक्ति सांसारिक शक्तिके द्वारा पराभूत हो जाय, परन्तु उसकी महिमा सांसारिक महिमाको अतिक्रमण कर एक अलौकिक जगतमें अपनी अचल महिमा स्थापित करती थी। इस प्रकार उस शक्तिका पराभव कभी सम्भव न था। वह सत्यकी शक्ति थी, वह धर्मकी शक्ति थी। किन्तु, उसका विकास केवल महान् आत्माओंमें सम्भव था। इसलिए, मध्य-युगकी कथाओंमें महान् आत्माओंकी गाथाएँ हैं,—सर्वसाधारणकी कथाएँ नहीं।

आधुनिक युगमें मनुष्य-मात्रमें उसी शक्तिका अनुभव कर कवियोंने साधारण मनुष्योंको ही अपनी रचनाओंमें नायकका स्थान प्रदान किया है। नीच हो या क्षुद्र, कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जिसके अन्तर्जगतमें उस ज्योतिर्मय शक्तिकी लीला न दिखाई पड़ती हो। साधारण मनुष्यके दैनिक जीवनमें भी, उनके साधारण सुख-दुःख और पाप-पुण्यके क्रिया-कलापोंमें भी जीवनकी एक सम्पूर्णता है जिनमें समस्त विश्वमें एक ही भाव, एक ही शक्ति, एक ही सत्ताका अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है।

मैंने कहा—आधुनिक साहित्यमें विराट् चरित्रोंकी अथवा महत् भावोंकी प्रधानता क्या सम्भव ही नहीं है? तुम लोगोंके विवादसे तो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि कवि केवल अपने युगकी एक वस्तु-मात्र है। मानो उसकी कोई स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति है ही नहीं। मेरी समझमें तो जिनमें प्रतिभा है वे मौलिक चरित्रोंकी सृष्टि अवश्य करते हैं। वाल्मीकि हों या होमर, कालिदास हों या शेक्सपियर, स्काट हों या बंकिमचन्द्र,—चरित्रोंकी सृष्टिमें ही उनका विशेष कर्तृत्व प्रकट होता है। यदि प्राचीन कालके कवियोंमें प्रतिभा थी तो आधुनिक कालके कवियोंमें प्रतिभाका अभाव नहीं हो गया है। मैं तो यह समझता हूँ कि आधुनिक उपन्यासोंका रहस्य जाननेके लिए हमें प्राचीन कथाओंका अनुसन्धान नहीं करना पड़ेगा। आधुनिक साहित्यमें कथाओंका एक दूसरा ही रूप हो गया है। उनका स्थान भी कम हो गया है। सच तो यह है कि प्राचीन कालमें महाकाव्योंका जो

स्थान था उसे अब आधुनिक उपन्यासोंने ले लिया है। प्राचीन महाकाव्योंमें और आधुनिक उपन्यासोंमें जो भेद है वह केवल रूपका भेद है। लक्ष्य दोनोंका एक ही है। यह सच है कि महाकाव्यमें जिन बातोंका समावेश होता था उनको अब कोई भी उपन्यासकार अपने उपन्यासमें स्थान नहीं दे सकता। यदि वह ऐसा करे तो उसकी कथाका रस ही नष्ट हो जायगा। इसी प्रकार यदि महाकाव्योंमें उन बातोंको स्थान दिया जाय जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन उपन्यासकार किया करते हैं तो उस महाकाव्यका कोई महत्त्व ही न रह जायगा। बात यह है कि विषय महत् होनेपर भी उपन्यासकारकी कलाके साधन कुछ दूसरे ही होते हैं। अतएव, यह कहना चाहिए कि प्राचीन कालसे लेकर आज तक आप लोगोंने जिस वस्तुका विकास बतलाया है वह केवल रूपका विकास है,—वस्तुका विकास नहीं। रूपके लिए हम दूसरोंका आश्रय ग्रहण करते हैं; परन्तु, वस्तु हम लोगोंकी अनुभूतिका फल है। वाल्मिकिने रामचरितका वर्णन किया है और तुलसीदास तथा केशवदासने भी रामचन्द्रकी कथाएँ लिखी हैं। विषय एक है, रूप भी एक है; क्योंकि, तीनोंने महाकाव्य ही लिखे हैं; परन्तु भेद उनमें प्रत्यक्ष है और उसका एकमात्र कारण है उनकी पृथक् पृथक् अनुभूति।

महेशने कहा—आप एक दूसरी ही बातकी चर्चा करते हैं और हम लोगोंका विवाद कुछ और ही था। परन्तु, आपके इस कथनके विरुद्ध भी मैं कुछ कहना चाहता हूँ। साहित्यमें कार्य-कारणका नियम उतना ही व्यापक है जितना बाह्य जगतमें। संसारमें जब कोई कार्य होता है, तब उसका एक कारण भी होता है। साहित्यमें सहसा किसी ग्रन्थकी सृष्टि नहीं हो जाती। कवि शून्यतासे सामग्री नहीं प्राप्त कर सकता। उसके लिए एक विशेष बाह्य स्थितिकी आवश्यकता होती है। सच तो यह है कि जब तक उसके लिए समाज प्रस्तुत नहीं है, तब तक वह प्रकट भी नहीं होता। जो भावनाएँ कविके काव्यकी उपजीव्य हैं, वे समाजमें पहलेसे प्रचलित हो जाती हैं। यदि तुलसीदासके पहले भक्तिकी भावना प्रबल न होती तो रामचरित-मानसकी सृष्टि भी न होती। सृष्टि होती तो ऐसे महाकाव्यकी जो किरातार्जुनीयका दूसरा रूप होता। यह भक्ति-भावना भी किसी कारणका परिणाम है। वह कारण क्या है, यह जाननेके लिए हमें तत्कालीन और उसके पूर्ववर्ती इतिहासपर दृष्टि डालनी होगी। इतिहास और साहित्यसे विशेष सम्बन्ध है। साहित्यसे इतिहास स्पष्ट होता है और

इतिहाससे साहित्य। विद्वानोंने अब यह समझ लिया है कि साहित्य केवल कल्पनाका क्रीड़ास्थल नहीं है और न वह उत्तेजित मस्तिष्ककी सृष्टि-मात्र है। यह अपने कालके मानसिक विकासका चित्र है। हम लोगोंके विवादका मुख्य विषय यह विकास ही था। प्राचीन काल, मध्य यूरोप और आधुनिक युगमें किन किन भावोंकी प्रधानता होनेके कारण साहित्यमें किस किस आदर्शकी सृष्टि हुई और उन आदर्शोंके द्वारा जातिकी कितनी उन्नति या अवनति हुई, अभी हम लोगोंके विवादका विषय यही था।

मैंने कहा—पर वर्तमान साहित्यकी एक विशेषता उसका आदर्श भी है। वर्तमान साहित्यका आदर्श है उन सामाजिक और राजनीतिक समस्याओंको हल करना जिनके कारण सर्वत्र अशांति फैली हुई है। आधुनिक साहित्यमें तीन प्रकारके आदर्श स्वीकृत हुए हैं—रियलिस्ट, आइडियलिस्ट और रोमेण्टिसिस्ट।

संसारमें जो घटनाएँ प्रतिदिन होती हैं, उनका यथार्थ चित्रण करना रियलिस्ट कला-कोविदोंका काम है। ऐसे लेखकोंकी रचना पढ़ते समय यही जान पड़ता है कि मानो हमने यह दृश्य स्वयं कहीं देखा है। यही नहीं, किन्तु उसके पात्रोंके चरित्रोंमें हम अपने परिचित व्यक्तियोंके जीवनका सादृश्य देख लेते हैं।

आइडियलिस्ट लेखक एक आदर्श चरित्रके उद्घाटनकी चेष्टा करते हैं। संसारकी दैनिक घटनाओंमें वे ऐसे भावोंका समावेश करते हैं कि जिनसे एक अपूर्व चित्र खिल उठता है। वह चित्र पाठकोंके हृदयपर स्थायी प्रभाव डालता है। पाठक अपने अनुभवद्वारा कविके आदर्शकी उच्चताको स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे लेखक सत्यका बहिष्कार नहीं करते। वे संसारकी दैनिक घटनाओंसे ही अपनी कथाके लिए सामग्रीका संग्रह करते हैं; परन्तु, उनकी कृतियोंमें घटनाओंका ऐसा विन्यास किया जाता है कि उनमें कुछ भी अलौकिकता या असाधारणता ज्ञात नहीं होती। पाठकोंके मनमें यही बात उदित होती है कि ऐसा हमने देखा तो नहीं है, पर देखना अवश्य चाहते हैं।

रोमेण्टिक साहित्य कल्पनाकी सृष्टि है। उसमें साधारण घटनाओंमें भी एक असाधारणताका अनुभव कराया जाता है।

आधुनिक साहित्यमें इन तीनों आदर्शोंका समावेश हो रहा है। मेरी समझमें यह मानना भ्रमपूर्ण है कि आधुनिक साहित्यमें रियलिज़मकी ही प्रधानता है। आधुनिक साहित्यका मुख्य उद्देश्य यही जान पड़ता है कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी

रक्षा कर समाजके साथ उसका नैसर्गिक यथार्थ सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाय। जो जो कृत्रिम अश्रेयस्कर व्यवधान हैं, वे नष्ट कर दिये जायँ। इसीसे आधुनिक साहित्यमें वर्तमान कालकी सभ्यताके अन्धकारमय भागपर पर्दा डालकर छिपानेकी चेष्टा नहीं की जाती और उसीके साथ यह बात भी प्रकट कर दी जाती है कि वह किस प्रकार ज्योतिर्मय हो सकता है।

महेशने कहा—मैं भी यही कहना चाहता हूँ। आधुनिक साहित्यमें मैं किसी प्रकारकी हीनताका अनुभव नहीं कर रहा हूँ। यह सच है कि पहले जैसे विराट् चरित्रोंकी सृष्टि होती थी, वैसी सृष्टि अब नहीं होती। पर आज कल मनुष्योंके मानसिक भावोंमें एक बड़ा परिवर्तन हो गया है। पहलेकी तरह देश-कालमें आबद्ध होकर वे सङ्कीर्ण विचारोंके नहीं रहे हैं। उनमें यथेष्ट स्वतन्त्रता आ गई है। पहले मनुष्योंकी जैसी प्रवृत्ति थी,—उनमें प्रेम, घृणा आदि भावोंका जैसा संघर्ष होता था, वैसी लीला हम शेक्सपियर आदिकी रचनाओंमें देखते हैं। परन्तु, अब यह बात नहीं है। आजकल युवावस्थाकी उद्दाम वासना और प्रेम व्यक्त करनेके लिए हमें रोमियो-जूलियट अथवा एण्टोनी-क्लियोपेट्राकी सृष्टि करनी नहीं होगी। उनसे हमारा काम भी नहीं चलेगा। आजकलके मनुष्यमें भोग-लालसाके साथ ही एक सौन्दर्य-वृत्ति भी है, जिसमें समाज-बोध और अध्यात्म-बोधका मिश्रण हो गया है। उसके हृदयका आवेग रोमियो अथवा ऑथेलोके समान सरल नहीं है। वह बड़ा जटिल हो गया है। 'क्राइम एण्ड पनिशमेण्ट' नामक उपन्यासमें विपरीत भावोंकी अभिव्यक्ति इस तरह हुई है कि उसके पात्रोंमें जहाँ एक ओर नीच प्रवृत्ति है, वहाँ दूसरी ओर दिव्य भावोंकी प्रधानता है। जॉर्ज मेरेडिथके 'दी ईगोइस्ट' का नायक सचमुच कैसा था, यह न तो वह जान सका और न उसके साथी ही। उपन्यास-भरमें उसके चरित्रकी इसी जटिलताका विश्लेषण किया गया है। रवीन्द्र बाबूके 'घर-बाहर' नामक उपन्यासमें सन्दीपके चरित्रमें भी वही जटिलता है।

सच तो यह है कि आधुनिक उपन्यासोंके कितने ही प्रसिद्ध नायकोंके चरित्र ऐसे अङ्कित किये गये हैं कि जब हम उनके संस्कारोंके अनुसार उनपर दृष्टिपात करते हैं, तब तो हमें उनके चरित्रमें हीनता दिखाई देती है; पर सत्यकी ओर लक्ष्य रखकर देखनेसे यही कहना पड़ता है कि उनमें उज्ज्वलता भी है। वर्तमान युग परीक्षाका युग है। आधुनिक साहित्यमें

रस और तत्त्वका अपूर्व सम्मिलन हो गया है। सच्ची बात यह है रमेश बाबू, कि अतीतका सिर्फ गौरव ही अवशिष्ट रहता है। जो क्षुद्रता होती है उसे काल नष्ट कर देता है। इसीसे अतीतसे तुलना करनेपर हमें वर्तमान गौरव-पूर्ण प्रतीत नहीं होता। सत्यकी परीक्षासे घबड़ाकर कल्पनाके विलास-विभ्रमका आश्रय मत लीजिए।

लाल साहबने कहा—आपका कहना सर्वथा उचित है। कल्पनाद्वारा कमसे कम उदर-पूर्तिकी सम्भावना नहीं है; और मेरे लिए सबसे अधिक आवश्यक यही है। बख्शीजी, आप देख तो आइए कि अब कितनी देर है। अगर अधिक देर हो तो कल्पनाका आश्रय लेकर हम लोग क्षुधाको कुछ देर और रोक रक्खें।

लाल साहबने इस प्रकार उस दिनके विवादका अन्त कर दिया। फिर कथा-रहस्यका उद्घाटन हुआ।

आज लाल साहब नहीं है। केवल उनकी स्मृति रह गई है। लाल साहबकी बातें जब मैं कर रहा था, तब मेरे साथीने पूछा—वे थे कौन? उन्होंने काम क्या किया है?

मैंने कहा—भाई, वे कोई नहीं थे। छत्तीसगढ़के एक छोटे कस्बे खैरागढ़में उनका जन्म हुआ और वहीं वे जीवन-भर रहे। उन्होंने कोई भी बड़ा काम नहीं किया। हँसी-खेलमें ही उन्होंने अपना जीवन व्यतीत कर दिया। पर अन्त तक उन्हें किसीने भी कभी क्षण-भर भी खिन्न नहीं देखा। सङ्कट किसपर नहीं आता, चिन्ता किसे नहीं होती, पर रणजीतसिंहने हँसते हँसते जीवनकी यात्रा समाप्त कर दी।

रहे तुम तो हँसते ही नित्य, सह लिया हँस कर विकट प्रहार,
और हँसते ही-हँसते आज, छोड़ कर चले गये संसार।
विज्ञ-जन रहते हैं उद्विग्न, क्योंकि यह है जीवन संग्राम,
किन्तु तुमने तो रणजीतसिंह, किया हँस कर ही सार्थक नाम।

अनुक्रमणिका

झलमला

मैं बरामदेमें टहल रहा था। इतनेमें मैंने देखा कि विमला दासी अपने आँचलके नीचे एक प्रदीप लेकर बड़ी भाभीके कमरेकी ओर जा रही है। मैंने पूछा—क्यों री, यह क्या है?

वह बोली—झलमला।

मैंने फिर पूछा—इससे क्या होगा?

उसने उत्तर दिया—नहीं जानते हो बाबू, आज तुम्हारी बड़ी भाभी पण्डितजीकी बहूकी सखी होकर आई हैं। इसीलिए मैं उन्हें झलमला दिखाने जा रही हूँ।

तब तो मैं भी किताब फेंककर घरके भीतर दौड़ गया और दीदीसे जाकर कहने लगा—दीदी, थोड़ा तेल तो दो।

दीदीने कहा—जा, अभी मैं काममें लगी हूँ।

मैं निराश होकर अपने कमरेमें लौट आया। फिर सोचने लगा—यह अवसर जाने न देना चाहिए, अच्छी दिल्लगी होगी। मैं इधर

उधर देखने लगा। इतनेमें मेरी दृष्टि मोमबत्तीके टुकड़ेपर पड़ी। मैंने उसे उठा लिया और एक दियासलाईका बक्स लेकर भाभीके कमरेकी ओर गया। मुझे देखकर भाभीने पूछा—कैसे आये बाबू ?

मैंने बिना उत्तर दिये ही मोमबत्तीके टुकड़ेको जलाकर उनके सामने रख दिया। भाभीने हँसकर पूछा—यह क्या है ?

मैंने गम्भीर स्वरमें उत्तर दिया—झलमला।

भाभीने कुछ न कहकर मेरे हाथपर पाँच रुपये रख दिये। मैं कहने लगा—भाभी, क्या तुम्हारे प्रेमके आलोकका इतना ही मूल्य है ?

भाभीने हँसकर कहा—तो कितना चाहिए ?

मैंने कहा—कमसे कम एक गिनी।

भाभी कहने लगी—अच्छा, इसपर लिख दो; मैं अभी देती हूँ।

मैंने तुरत ही चाकूसे मोमबत्तीके टुकड़ेपर लिख दिया, 'मूल्य एक गिनी।' भाभीने गिनी निकालकर मुझे दे दी और मैं अपने कमरेमें चला आया। कुछ दिनों बाद, गिनीके खर्च हो जानेपर, मैं यह घटना बिलकुल भूल गया।

आठ वर्ष व्यतीत हो गये। मैं बी० ए०, एलएल० बी० होकर इलाहाबादसे घर लौटा। घरकी वैसी दशा न थी जैसी आठ वर्ष पहले थी। न भाभी थी और न विमला दासी ही। भाभी हम लोगोंको सदाके लिए छोड़कर स्वर्ग चली गई थीं और विमला कटङ्गीमें खेती करती थी।

सन्ध्याका समय था। मैं अपने कमरेमें बैठा न जाने क्या सोच रहा था। पास ही कमरेमें पड़ोसकी कुछ स्त्रियोंके साथ दीदी बैठी

थीं। कुछ बातें हो रही थीं, इतनेमें मैंने सुना दीदी किसी स्त्रीसे कह रही हैं, "कुछ भी हो बहन, मेरी बड़ी बहू घरकी लक्ष्मी थी।" उस स्त्रीने कहा, "हाँ बहन। खूब याद आई, मैं तुमसे पूछनेवाली ही थी। उस दिन तुमने मेरे पास सखीका संदूक भेजा था न?" दीदीने उत्तर दिया, "हाँ बहन, बहू कह गई थी कि उसे रोहिणीको दे देना।" उस स्त्रीने कहा, "उसमें सब तो ठीक था, पर एक विचित्र बात थी।" दीदीने पूछा, "कैसी विचित्र बात?" वह कहने लगी, "उसे मैंने खोलकर एक दिन देखा तो उसमें एक जगह खूब हिफ़ाजतसे रेशमी रूमालमें कुछ बँधा हुआ मिला। मैं सोचने लगी, यह क्या है। कुतूहलवश उसे खोलकर मैंने देखा। —बहन, कहो तो उसमें भला क्या रहा होगा?" दीदीने उत्तर दिया, "गहना रहा होगा।" उसने हँसकर कहा, "नहीं, उसमें गहना न था। वह तो एक अधजली मोमबत्तीका टुकड़ा था और उसपर लिखा हुआ था 'मूल्य एक गिनी।'"

क्षण-भरके लिए मैं ज्ञानशून्य हो गया, फिर अपने हृदयके आवेगको न रोककर मैं उस कमरेमें घुस पड़ा और चिल्लाकर कहने लगा—वह मेरी है, मुझे दे दो।

कुछ स्त्रियाँ मुझे देखकर भागने लगीं। कुछ इधर उधर देखने लगीं। उस स्त्रीने अपना सिर ढाँकते ढाँकते कहा, "अच्छा बाबू, मैं कल उसे भेज दूँगी।" पर मैंने रातको एक दासी भेजकर उस टुकड़ेको मँगा लिया।

उस दिन मुझसे कुछ खाया नहीं गया। पूछे जानेपर मैंने कहकर टाल दिया कि सिरमें दर्द है। बड़ी देरतक मैं इधर उधर टहलता

रहा। जब सब सोनेके लिए चले गये तब मैं अपने कमरेमें आया। मुझे उदास देखकर कमला पूछने लगी, 'सिरका दर्द कैसा है?' पर मैंने कुछ उत्तर न दिया; चुपचाप जेबसे मोमबत्तीको निकालकर जलाया और उसे एक कोनेमें रख दिया।

कमलाने पूछा—यह क्या है?

मैंने उत्तर दिया—झलमला।

कमला कुछ न समझ सकी। मैंने देखा कि थोड़ी देरमें मेरे झलमलेका क्षुद्र आलोक रात्रिके अनन्त अन्धकारमें विलीन हो गया।

गूँगी

गूँगीका नाम था गोमती पर वह खूब बोलती थी, इसीसे मैंने उसका नाम 'गूँगी' रख दिया था। 'गूँगी' हो जानेपर भी गोमतीकी वाक्-शक्ति कम नहीं हुई। तो भी सब लोग उसे गूँगी ही कहते गये।

गूँगी हम लोगोंकी दासी विमलाकी लड़की थी। नीच वंशमें जन्म देकर भी भगवानने उसे कुछ ऐसा रूप दिया था कि उसे देखते ही सब लोग उसे गोदमें ले लेना चाहते थे। वह प्रतिदिन अपनी माँके साथ हमारे घर आती। जब तक विमला घरका काम-काज करती, वह मिनीके साथ खेलती। जब मिनी पढ़नेके लिए आती, तब वह आ जाती। पर वह चुप बैठ नहीं सकती थी, इसलिए वह भी मिनीके साथ पढ़ती थी। गूँगीकी बुद्धि भी तीव्र थी। मैंने देखा कि थोड़े ही दिनोंमें वह मिनीसे भी आगे बढ़ गई। उसकी ऐसी बुद्धि देख मैं उसे खूब उत्साहसे पढ़ाने लगा। मैं पाँच वर्ष तक बिलासपुरमें रहा और गूँगी पाँच वर्षतक मुझसे पढ़ती रही।

जब मुझे बिलासपुर छोड़कर कलकत्ते जाना पड़ा, तब गूँगी ग्यारह वर्षकी थी। पर उस समय भी उसने मुझसे बालिकाभूषण, भूगोल, अंकगणित और इतिहासके भी कुछ अंश पढ़ लिये। जाते समय मैं उसे 'रामचरित-मानस' देता गया।—मैं जानता था, थोड़े ही दिनोंमें वह सब भूल जायगी।

मैं कलकत्ते आया था एक दैनिक पत्रका सम्पादक होकर। मैं अभीतक एक स्कूल-मास्टर था। सम्पादक बनते ही मेरा सारा जीवन ही परिवर्तित हो गया।—अपने गाँवकी तो मुझे जरा भी खबर न थी, पर मेक्सिको और पेरूकी छोटी-बड़ी सभी घटनाओंको प्रकाशित करनेमें मैं अग्र था।—संसारके वृहत् जीवनमें मेरा क्षुद्र जीवन लुप्त हो गया। भिन्न भिन्न देशोंकी राजनीतिक समस्याओंके आगे मेरा यथार्थ जीवन बिलकुल सार-हीन हो गया।

छुट्टियोंमें जब अपने घर आता तब मुझे अपना गाँव ही अपरिचित प्रतीत होता था। एक बार जब मैं घर आया तब मेरा मस्तिष्क फिजीकी राजनीतिक स्थितिकी आलोचनामें संलग्न था। मैं अपने ही विचारोंमें डूबा हुआ चुपचाप चला जा रहा था कि उसी समय किसीने कहा, "मास्टर साहब, आप कब आये?" मैं चौंक पड़ा, देखा कि एक सुन्दरी युवती मुझसे बातें कर रही है। मैंने पूछा, "तुम हो कौन?" उसने हँसकर कहा, "मैं तो गूँगी हूँ।" मैं गूँगीकी ओर चकित होकर देखने लगा।

कलकत्तेमें मैं पन्द्रह वर्ष तक रहा। पन्द्रह वर्षके बाद मैं फिर स्कूल-मास्टर होकर श्रीरामपुर चला आया। शीतकालका प्रारम्भ ही था पर ठण्ढ पड़ने लगी थी। मैं बाहर धूपमें कुरसी डालकर आरामसे 'स्टेट्समैन' पढ़ रहा था। कुछ देर पढ़नेके बाद मैंने स्टेट्समैन फेंक दिया और एक बार चारों ओर दृष्टिपात किया। मेरे घरके सामने ही एक पक्का कुआँ था। प्रतिदिन वहाँ प्रातःकाल स्त्रियोंकी बड़ी भीड़ रहती थी। उस दिन भी वहाँ स्त्रियोंकी संख्या कम न थी। मैंने देखा कि हमारे घरकी दासी मालती भी गगरा लिये बैठी है।

इतनेमें कुछ स्त्रियाँ लकड़ियोंका गट्ठा सिरपर रक्खे उधरसे निकलीं। मालतीने उनमेंसे एकको पुकारकर कहा, "लकड़ी बेचोगी?" एकने उत्तर दिया, "क्या दोगी?" मालती कहने लगी, "तू ही कह दे न, क्या लेगी?" उस स्त्रीने कहा, "आठ आने।" मालतीने कहा, "बस बहन, हो गया। यह तो लेन-देनकी बात नहीं है।" तब उस स्त्रीने कहा, "बहन, छः आनेसे कम न लूँगी। तुम्हें लेना हो तो ले लो, नहीं जाती हूँ।" यह कहकर वह जानेका उपक्रम करने लगी। मालतीने कहा, "मैं तो पाँच आने दूँगी।" तब वह स्त्री जाने लगी। इतनेमें दूसरी लकड़ीवालीने उससे कहा, "दे दे री, पाँच आने ठीक तो हैं।" उस स्त्रीने उत्तर दिया, "नहीं बहन, मैं न दूँगी, छः आनेसे एक कौड़ी भी कम न लूँगी।" तब तक मालतीने गगरा भर लिया था। कहने लगी, "अच्छा ला।" वह स्त्री मालतीके साथ आने लगी। उसकी संगिनी लकड़ीवाली दूसरी ओर चली गई।

फिर मैंने चश्मा साफ करके स्टेट्समैन उठा लिया और पढ़ने लगा। थोड़ा ही पढ़ा था कि मालती आकर कहने लगी, "बाबू, लकड़ीवाली लकड़ी रखकर कहाँ चली गई? उसने पैसे भी नहीं लिये।" मैंने कहा, "आती होगी। उसे क्या अपने पैसेकी चिन्ता न होगी?" मालती चुप हो रही। तब तक धूप कुछ तेज़ हो गई थी। मैंने उससे कहा, "मालती, कुरसी भीतर रख दे।"

मालतीने वैसा ही किया। मैं भीतर बैठ गया। दस बजते ही मैं स्कूल चला गया। दिन-भर मैं काममें लगा रहा। छुट्टी होते ही मैं घर लौट आया। घरमें आकर मैंने देखा कि पुरुषोत्तम बाबू मेरे

कमरेमें बैठे हुए हैं। मैंने प्रसन्नता-सूचक शब्दोंमें कहा, "ओहो पुरुषोत्तम बाबू! इतने दिनोंमें! मिनी कैसी है?"

पुरुषोत्तम बाबूने कहा "वह भी तो आई है।" तब तो मैं पुरुषोत्तम बाबूको छोड़कर भीतर चला गया। देखा तो मिनी कमलाके साथ बैठी हुई है। मिनीने प्रणाम किया। मैंने उसे अंतःकरणसे आशीर्वाद दिया। बड़ी देर तक हम लोग बैठे रहे। इधर उधरकी खूब गप्पें होती रहीं। ग्यारह बजे हम लोग सोने गये।

दूसरे दिन मैं बाहर कुरसी डालकर बैठ गया। पुरुषोत्तम बाबू अभी तक सो रहे थे। मैंने स्टेट्समैन उठा लिया। थोड़ी देर बाद मैं फिर कुएँकी ओर देखने लगा। आज भी वहाँ स्त्रियोंकी वैसी ही भीड़ थी। आज भी मालती गगरा लिये बैठी थी। इतनेमें कलकी ही लकड़ीवाली फिर उधरसे निकल पड़ी। मालतीने उसे पुकारकर कहा, "ओ लकड़ीवाली, कल तूने पैसे नहीं लिये?" वह कहने लगी, "बहन, आज भी लकड़ियाँ लाई हूँ, इन्हें भी मोल ले लो। दोनोंका दाम साथ ही ले लूँगी।" मालतीने कहा, "अच्छा।" इतनेमें पुरुषोत्तम बाबू आ गये। मैं उनसे गप्पें मारने लगा।

थोड़ी देरमें भीतरसे हल्ला हुआ। हम लोग घबराकर भीतर दौड़े। देखा, लकड़ीवालीको भोलाने पकड़ लिया है। मालती आदि और चार-पाँच स्त्रियाँ इधर उधर खड़ी थीं। मुझे देखकर सब चुप हो गई। मैंने पूछा—माजरा क्या है?

मालती कहने लगी—बाबू, मैं इस लकड़ीवालीके पैसे लानेके लिए भीतर गई, लौटनेपर देखती हूँ कि यहाँ नहीं है। इतनेमें आपके

कमरेसे कुछ आवाज़ आई। मैं 'चोर चोर' कहकर चिल्लाने लगी। जब भोला आया, तब यह आपके कमरेमें पकड़ी गई।

भोलाने कहा—बाबू, इसने कपड़ोंमें कुछ छिपा लिया है।

मैंने लकड़ीवालीसे पूछा—क्यों, क्या बात है?

लकड़ीवालीने एक बस्ता निकालकर कहा—बाबूजी, मैं इसे रखनेके लिए आई थी।

मैंने बस्ता खोलकर देखा, तो उसमें रामचरितमानसकी एक कापी थी। उसके ऊपरी पृष्ठपर मेरे ही हाथका लिखा हुआ था, 'गूँगी।'

मैं चौंक पड़ा। वह मेरी गूँगी ही थी। 'गूँगी?' मैंने इतना कहा ही था कि गूँगी मेरे पैरोंपर गिर पड़ी।

विपर्यय

जानकीके विवाहका निमन्त्रण पाकर मैं मण्डला गया। वहाँ कमलाकान्त बाबूसे मेरा परिचय हुआ। कमलाकान्त बाबूका स्वभाव बड़ा गम्भीर था। लोगोंसे मिलते-जुलते कम थे पर यदि किसीसे उनका परिचय हो जाता तो उससे खूब बातें करते। उनका हृदय दयाका आगार था। दूसरोंके दुःखकी कल्पना-मात्रसे वे व्यथित हो जाते थे। इसी सम्बन्धमें एक बार उन्होंने मुझसे एक बड़ी हृदयद्रावक कथा कही। मैं कह नहीं सकता कि वह उनके मस्तिष्ककी उपज थी, यथार्थ घटना थी, अथवा किसी आख्यायिका-लेखककी कल्पना थी। पर उससे उनकी सहानुभूति अवश्य प्रकट होती है। वे कहानी नहीं कहा करते पर उस दिन एक ऐसी घटना हो गई कि उन्हें वह कहानी कहनी पड़ी। बात ऐसी हुई—

विवाह-विधि सम्पन्न हो जानेपर मैं पुरुषोत्तम बाबूके यहाँ गप-शप करनेके लिए गया। वहाँ मालूम हुआ कि पार्वतीका नथ खो गया है। मैंने अपनी बहुज्ञता दिखलानेके लिए कहा, "देखो, मैं उसका पता लगाये देता हूँ।" इतना कहकर मैंने कागज़ कलम लेकर एक कुण्डली बनाई और कुछ गणना करने लगा। कमलाकान्त बाबू एक कोनेमें बैठे चुपचाप देख रहे थे। कुछ इधर उधर दो-चार लकीरें खींचकर मैंने कहा, "एक स्त्री है—" मैं आगे कुछ कहना ही चाहता था कि कमलाकान्त बाबूने उठकर कहा, "बस, किसीके जीवनके साथ उपहास मत करो। मनुष्य, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष, इतना तुच्छ नहीं है

कि वह तुम्हारे उपहासकी सामग्री हो।" मैं घबड़ा गया और मेरा मस्तक नत हो गया। कमलाकान्त बाबूने फिर कहा, "सुनो, मैं तुम्हें एक ऐसी ही घटना सुनाता हूँ।" कमलाकान्त बाबू कहने लगे—

"सुशीलाने उच्च कुलमें जन्म लिया था। उसका बाल्य-काल महलोंमें, दास-दासियोंके संरक्षणमें, व्यतीत हुआ था पर देवके विपर्ययसे उसे अपनी प्रौढावस्थामें दुर्दिन देखने पड़े। उसके पिताने उसको एक सुयोग्य पतिके हाथोंमें समर्पित कर, कन्या-ऋणसे मुक्त होकर, परलोकवास किया। माताकी मृत्यु बाल्य-कालमें ही हो गई थी। इस प्रकार जब पैंतीस वर्षकी अवस्थामें वह मातृ-पितृ-सुखसे वञ्चित हो गई, तब उसका पति उसे छोड़ सदाके लिए चल बसा। तब वह सुख-सौभाग्य-विहीन हो सर्वथा निराश्रय हो गई। गोदमें पाँच सालका एक लड़का था। इसके पहले दो लड़के और हुए थे पर उनकी मृत्यु शैशव-कालमें ही हो गई थी। निस्सहाय होकर शहरमें रहना असम्भव था। इसलिए, एक मामाका आश्रय ग्रहण करना ही समुचित समझा। उसके मामा पासके एक गाँवमें रहते थे, बड़े धनी और प्रतिष्ठित थे। सुशीला एक बैलगाड़ी लेकर रवाना हुई और बारह बजे दिनको वह अपने मामाके घर पहुँच गई।

"उस दिन उसके मामाके यहाँ पुत्र-जन्मका उत्सव हो रहा था। विराट् आयोजन था। दूर-दूरके रिश्तेदार आये थे। घरमें खूब चहल-पहल थी। स्वर्णालंकारोंसे भूषित स्त्रियाँ कभी इधर और कभी उधर आ-जा रही थीं। बाहर भिक्षुकोंकी भीड़ थी और खास कमरेमें इष्ट-मित्रोंकी; सुशीलाने भीतर जाकर अपनी मामीको प्रणाम

विपर्यय

जानकीके विवाहका निमन्त्रण पाकर मैं मण्डला गया। वहीं कमलाकान्त बाबूसे मेरा परिचय हुआ। कमलाकान्त बाबूका स्वभाव बड़ा गम्भीर था। लोगोंसे मिलते-जुलते कम थे पर यदि किसीसे उनका परिचय हो जाता तो उससे खूब बातें करते। उनका हृदय दयाका आगार था। दूसरोंके दुःखकी कल्पना-मात्रसे वे व्यथित हो जाते थे। इसी सम्बन्धमें एक बार उन्होंने मुझसे एक बड़ी हृदयद्रावक कथा कही। मैं कह नहीं सकता कि वह उनके मस्तिष्ककी उपज थी, यथार्थ घटना थी, अथवा किसी आख्यायिका-लेखककी कल्पना थी। पर उससे उनकी सहानुभूति अवश्य प्रकट होती है। वे कहानी नहीं कहा करते पर उस दिन एक ऐसी घटना हो गई कि उन्हें वह कहानी कहनी पड़ी। बात ऐसी हुई—

विवाह-विधि सम्पन्न हो जानेपर मैं पुरुषोत्तम बाबूके यहाँ गप-शप करनेके लिए गया। वहाँ मालूम हुआ कि पार्वतीका नथ खो गया है। मैंने अपनी बहुज्ञता दिखलानेके लिए कहा, "देखो, मैं उसका पता लगाये देता हूँ।" इतना कहकर मैंने कागज़ कलम लेकर एक कुण्डली बनाई और कुछ गणना करने लगा। कमलाकान्त बाबू एक कोनेमें बैठे चुपचाप देख रहे थे। कुछ इधर उधर दो-चार लकीरें खींचकर मैंने कहा, "एक स्त्री है—" मैं आगे कुछ कहना ही चाहता था कि कमलाकान्त बाबूने उठकर कहा, "बस, किसीके जीवनके साथ उपहास मत करो। मनुष्य, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष, इतना तुच्छ नहीं है

कि वह तुम्हारे उपहासकी सामग्री हो।" मैं घबड़ा गया और मेरा मस्तक नत हो गया। कमलाकान्त बाबूने फिर कहा, "सुनो, मैं तुम्हें एक ऐसी ही घटना सुनाता हूँ।" कमलाकान्त बाबू कहने लगे—

"सुशीलाने उच्च कुलमें जन्म लिया था। उसका बाल्य-काल महलोंमें, दास-दासियोंके संरक्षणमें, व्यतीत हुआ था पर दैवके विपर्ययसे उसे अपनी प्रौढावस्थामें दुर्दिन देखने पड़े। उसके पिताने उसको एक सुयोग्य पतिके हाथोंमें समर्पित कर, कन्या-ऋणसे मुक्त होकर, परलोकवास किया। माताकी मृत्यु बाल्य-कालमें ही हो गई थी। इस प्रकार जब पैंतीस वर्षकी अवस्थामें वह मातृ-पितृ-सुखसे वञ्चित हो गई, तब उसका पति उसे छोड़ सदाके लिए चल बसा। तब वह सुख-सौभाग्य-विहीन हो सर्वथा निराश्रय हो गई। गोदमें पाँच सालका एक लड़का था। इसके पहले दो लड़के और हुए थे पर उनकी मृत्यु शैशव-कालमें ही हो गई थी। निस्सहाय होकर शहरमें रहना असम्भव था। इसलिए, एक मामाका आश्रय ग्रहण करना ही समुचित समझा। उसके मामा पासके एक गाँवमें रहते थे, बड़े धनी और प्रतिष्ठित थे। सुशीला एक बैलगाड़ी लेकर रवाना हुई और बारह बजे दिनको वह अपने मामाके घर पहुँच गई।

"उस दिन उसके मामाके यहाँ पुत्र-जन्मका उत्सव हो रहा था। विराट् आयोजन था। दूर-दूरके रिश्तेदार आये थे। घरमें खूब चहल-पहल थी। स्वर्णालंकारोंसे भूषित स्त्रियाँ कभी इधर और कभी उधर आ-जा रही थीं। बाहर भिक्षुकोंकी भीड़ थी और खास कमरेमें इष्ट-मित्रोंकी; सुशीलाने भीतर जाकर अपनी मामीको प्रणाम

किया; पर वह अपने काममें ऐसी व्यस्त थी कि उसने इसकी ओर दृष्टिपात तक नहीं किया।

"बेचारी सुशीला एक कोनेमें जाकर बैठ गई। दो घण्टे हो गये। किसीने उससे एक बात तक नहीं पूछी। लड़का खानेके लिए हठ करने लगा। सुशीला अपने साथ कुछ मिठाई लाई थी। उसीको देकर उसने लड़केको शान्त किया। तीन बजनेके बाद उधरसे एक रमणी निकली। उसने सुशीलाको देखकर कहा, 'सुशीला, तुम हो? कब आई?' सुशीलाने उत्तर दिया, 'अभी तो आई हूँ, कुछ ही देर हुई है।' रमणीने पूछा, 'आज बड़ी गड़बड़ है। तुमने तो कुछ खाया-पिया न होगा।' सुशीलाने लज्जित होकर कहा, 'नहीं।' 'देखो, मैं कुछ लाती हूँ' कहकर वह रमणी चली गई। थोड़ी देरमें वह एक पत्तलमें कुछ मिठाई और पूरियाँ ले आई, पर वे न जाने कबकी बनी थीं। उनसे बड़ी दुर्गन्ध आती थी। सुशीला भूखसे व्याकुल थी। उसने किसी तरह उनसे ही अपनी क्षुधा शान्त की।

"पाँच बजे घरमें बड़ा हल्ला हुआ। किसीने कहा 'अभी तो वह यहीं खेल रहा था।' दूसरेने कहा 'मैंने अभी तो उसके गलेमें हार देखा था।' किसी तीसरेकी आवाज़ आई, 'फिर ले कौन गया? बाहरका तो कोई आदमी आया नहीं।' सुशीला भी हल्ला सुनकर भीतर गई। उसे देखकर उसकी मामीने कहा—यह तो बड़ा अन्धेर है!

"सुशीलाने पूछा—क्या हुआ मामी?

"मामी—क्या हुआ? जैसे तुम कुछ जानती ही न हो!

"सुशीला सहमकर खड़ी हो गई।

"एक रमणीने कहा—लल्ला अभी यहीं खेल रहा था। उसके गलेका हार किसीने उतार लिया।

"मामी बोल उठी—मैं जानती हूँ, खूब पहचानती हूँ, किसने हार निकाल लिया है। भला चाहे तो वह दे दे, बाहरका कोई आदमी आया नहीं।

"दूसरी रमणी—हम लोग इतने दिनोंसे हैं पर ऐसी चोरी कभी नहीं हुई।

"एक दासीने कहा—यह तो आफत है। हम लोग गरीब हैं, हमीपर सब सन्देह करेंगे।

"मामी—तुमसे कौन कहेगा? इतने दिन काम करते हो गये, कभी एक तिनका उधरका इधर नहीं हुआ।

"दासी—तभी तो कहती हूँ माजी, अब तो यहाँ रहना मुश्किल हो गया। ऐसी बात होगी तो हम लोगोंका ठिकाना कहाँ?

"मामी—अच्छा, उन्हें आ जाने दो। भेद खुल जायगा।

"सब स्त्रियाँ चली गईं। सुशीला बैठी रही। थोड़ी ही देरके बाद एक आई और उससे कहने लगी—बहिन, एक बात कहती हूँ, बुरा तो न मानोगी?

"सुशीला—कहो न।

"वृद्धा—बात यह है कि यदि तुमने हँसी करनेके लिए हार निकाल लिया हो, तो मुझे दे दो। मैं चुपचाप जाकर दे आऊँगी। किसीको मालूम नहीं होगा।

"सुशीला—मैं मर जाऊँगी; पर दूसरेकी चीज़ नहीं छुऊँगी।

"वृद्धा—मैं समझाकर कहती हूँ, तुम मेरी बेटीके समान हो। नहीं तो इसका फल अच्छा नहीं होगा।

"सुशीला रोने लगी। तब वृद्धा उठकर चली गई।

"इसके बाद उसकी मामी आई और उसने कहा, 'जरा खोजो तो लल्लाका हार कहाँ गिरा है।' सुशीला बोली, 'मामी, मैंने तो लल्लाको अभी देखा तक नहीं है। कहाँ खोजूँ?' मामी क्रुद्ध होकर बोली, 'चालाकी छोड़ो। कहींसे खोजकर हार निकाल दो, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। उन्हें मालूम होगा तो न जाने क्या कर डालेंगे।'

"सुशीलाने अपने बच्चेके सिरपर हाथ रखकर कहा, 'मामी, मैं शपथ खाकर कहती हूँ, मैं कुछ नहीं जानती।' मामी क्रुद्ध होकर चली गई। सुशीला रोकर कहने लगी, 'भगवन्, मैंने कौनसे बुरे काम किये हैं जिनके फल मुझे दे रहे हो। प्रभो, तुम ही मेरा कलंक दूर करो!

"इतनेमें ज्योतिषीजीको लेकर सुशीलाके मामा आये। ज्योतिषीने आकर सुशीलासे कहा 'बाई, ज्योतिष-शास्त्र झूठा नहीं होता। मैंने गणना करके देख लिया है, तुम्हींने वह हार निकाला है। अपनी भलाई चाहो तो अभी निकाल दो।' सुशीलाने उनके पैरोंपर गिरकर कहा, 'महाराज, मेरी रक्षा कीजिए। मुझपर मिथ्यापवाद मत लगाइए।' ज्योतिषीजीको भी क्रोध आ गया। उन्होंने मामा साहबकी ओर देखकर कहा, 'अब यह किसी तरह नहीं मानेगी, पुलिसके सुपुर्द कीजिए।'

"पुलिसका नाम सुनकर सुशीलाकी अन्तरात्मा काँप उठी। सुशीला अपने मामाके पैरोंपर गिरकर गिड़गिड़ाकर कहने लगी, 'मामा, मुझपर विश्वास करो। मैं शपथ खाकर कहती हूँ, मैंने तुम्हारा हार नहीं लिया'

"पर उसकी बातपर किसीको विश्वास नहीं हुआ। रात हो गई थी, इसलिए यह निश्चय किया गया कि सुबह होते ही पुलिस-जमादारको बुलाकर सुशीलाको उसके सुपुर्द कर देंगे।

"सब चले गये। सुशीला बैठे बैठे सोचने लगी कि सुबह होते ही मेरी सब मान-मर्यादा मिट्टीमें मिल जायगी। बच्चा सोया हुआ था। उसे देखकर वह बोली, 'बेटा, तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारी माँपर क्या बीत रही है।' बारह बज गये, सब सो गये। पर सुशीलाकी आँखोंमें नींद कहाँ? आँसुओंका प्रवाह बह रहा था। वह आकाशकी ओर देख रही थी।

"भगवान्ने उसकी प्रार्थना सुन ली। उसकी मान-मर्यादाको रख लिया। उसने मृत्युको भेज दिया। सुशीलाको कैपर कै होने लगी। शरीर अवसन्न होने लगा। वह लेट गई। चार बज गये। सुशीला अर्धमूर्छिता थी। बाहर दरवाजेपर कोई हल्ला करने लगा।

"भीतरसे किसीने फिर कहा—कौन है?

"बाहरसे आवाज़ आई—पुलिस जमादार।

"सुशीलाका हृत्कम्प बन्द हो गया।

"भीतरसे किसीने फिर कहा—क्या है?

"बाहरसे आवाज़ आई—यह दासी आपका हार लेकर भाग रही थी। मैं पकड़कर लाया हूँ। देखिए, आपहीका हार है?

"सुशीला संज्ञाशून्य हो गई थी। उसी समय सुशीलाके बच्चेने पुकारा—'माँ।'

कनक-रेखा

कहा जाता है कि संसार रंग-भूमि है, विधाता सूत्रधार है और उसकी इच्छाके अनुसार हम लोग अपने जीवनका खेल दिखाकर चले जाते हैं। यह कोई नहीं कह सकता कि कब इस नाटकका आरम्भ और कब इसका अन्त होगा। इस नाटकका उद्देश्य क्या है, कौन इसका प्रधान नायक है, यह कोई नहीं जानता। सभी अपना अपना खेल खेल रहे हैं। न जाने कब किसके खेलका अन्त हो जाय?

आज बत्तीस वर्षसे मैं भी यही खेल देख रहा हूँ। इतना अवश्य कहूँगा कि विधाताके लिए जो खेल है वह हम लोगोंके लिए विपत्ति है। सुख और दुःख, संयोग और वियोग, आशा और निराशाके विषम चक्रमें पड़कर हम लोगोंकी दुर्दशा हो जाती है। कितनी बार इस विषम चक्रका अनुभव कर अंतमें जीवन-निर्वाहके लिए मुझे घर छोड़कर जबलपुरका आश्रय लेना ही पड़ा।

पहले दिन जब मैं आफ़िससे लौटा तब रात हो गई थी। दिन-भर काम करनेके बाद जब कोई घर आने लगता है तब वह कुछ समयके लिए अपनी सारी चिन्ता भूल जाता है। वह जानता है कि घरमें उसके लिए स्नेहमय आयोजन किया गया है और बड़ी उत्सुकतासे उसकी प्रतीक्षा की जा रही है। परन्तु मेरे लिए घरमें न तो स्नेहका आयोजन है और न प्रतीक्षा है।—अपने कमरेमें बत्ती तक मुझे ही जलानी होगी। इसीसे जब अँधेरेमें मैं अपने घरके दरवाजेके पास खड़े होकर जेबमें चाबी खोजने लगा तब मुझे अपने ऊपर ह

क्रोध होने लगा। उसी समय पासके ही एक घरमें किसीने खिड़की खोल दी, जिससे प्रदीपकी एक क्षीण ज्योति-रेखा आने लगी। मुझे ऐसा जान पड़ा कि मानो यह किसीकी स्नेहमयी दृष्टिकी आलोक-रेखा है।

मनुष्योंको अपनी भाषाका गर्व है। जो हमारी भाषा नहीं बोल सकते उन्हें हम तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं। परन्तु हम लोगोंकी भाषामें इतनी शक्ति कहाँ है कि जिसके एक ही शब्दमें, एक ही दृष्टिमें एक ही स्पर्शमें हृदयकी समस्त आकांक्षा, अनुराग और विश्वास व्यक्त हो जाय? और यही, मूक प्रकृतिकी अव्यक्त भाषासे एक ही क्षणमें हो जाता है।—यह प्रदीप कितना क्षुद्र है, इसकी ज्योति कितनी क्षणिक है! सूर्यकी प्रभा, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना, अथवा नक्षत्रोंके स्थिर प्रकाशके आगे इसकी यह चंचल क्षीण ज्योति कितनी तुच्छ है! किन्तु यह हम लोगोंके जीवनका सहचर है।—जिसे हम संसार कहते हैं, जो हमारा कर्म-क्षेत्र है, उससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जब कर्म-चक्रकी गति थोड़ी देरके लिए रुक जाती है, जब संसार अन्धकारमय हो जाता है, तब हम प्रदीपका आश्रय लेते हैं। यह अन्धकारमें हमारा साथ देता है। इसका जीवन 'स्नेह'मय है। सूर्य हमें कर्म-पथकी ओर खींचकर ले जाता है, चन्द्रमा हमें विलासका पथ दिखला देता है; परन्तु, यह हमें घरका मार्ग बतलाता है। जहाँ कर्मकी गरिमा नहीं, जहाँ विलासकी छटा नहीं, जहाँ केवल प्रेमकी दीप्ति है, वहीं इसका स्थान है। कौन जानता है कि कितने 'स्नेह'से, कितने अनुरागसे, कितनी आकांक्षासे यह प्रकाश पाता है।

सहसा खिड़की वन्द हो गई और प्रकाशकी वह क्षीण-रेखा लुप्त हो गई। मैंने एक दीर्घ निःश्वास लेकर अपने घरका दरवाजा खोला।

ज्योतिकी वह क्षीण रेखा एक विधवाके घरसे आई थी। कुछ दिनोंके वाद उस मुहल्लेके सभी लोगोंसे मेरा जब परिचय हो गया तब मैंने जाना कि उस विधवाका नाम गोमती है। उसके पतिका नाम कमलाशङ्कर था। उस मुहल्लेमें ऐसा कोई नहीं था जिसने उसके पतिको देखा हो। सभी उसे विधवा ही देखते आये हैं। उसके दो मकान और थे जिनको उसने किरायेपर दे रक्खा था। उसीसे उसका जीवन-निर्वाह होता था। वह घरमें अकेली ही रहती थी। एक दासी जरूर घंटे-भर आकर वाहरका काम कर जाती थी। वही मकानोंका किराया भी वसूल कर लाती थी। इसके सिवा उसका कोई काम नहीं था। गोमती खुद अपने घरका सारा काम करती थी। दिन-भर वह काममें व्यस्त रहती थी। यदि पड़ौसकी कोई स्त्री उससे मिलनेके लिए जाती तो वह उसका सत्कार तो करती, परन्तु, वातचीत करनेमें उसका मन नहीं लगता था। वह अन्यमनस्क-सी रहती। ऐसा जान पड़ता कि वह कुछ करनेके लिए व्यग्र है और यही चाहती है कि कब यह उठकर चली जाय तो मैं अपना काम करूँ। इसीसे उसके घर कोई स्त्री नहीं जाती थी। मुहल्लेमें आमोद-प्रमोद और उत्सव होते ही रहते थे, परन्तु, वह कहीं नहीं जाती थी। संसारमें जो जीवन-स्रोत वह रहा है उससे उसका कोई सम्वन्ध ही नहीं था।

एक दिन कुछ स्त्रियाँ गाती हुई चली जा रही थीं। जब वे मेरे घरके सामनेसे निकलीं तब सहसा मेरी दृष्टि गोमतीकी

खिड़कीकी ओर गई। मैंने देखा, गोमती भी देख रही है। परन्तु उसकी दृष्टिमें न हर्ष था न विषाद। उसका यह निर्विकार भाव देखकर मुझे ऐसा जान पड़ा कि इस भव-समुद्रमें वह पर्वतके समान स्थिर, अचल खड़ी है। चारों ओर जलकी तरंगें उठ रही हैं और वह चुपचाप वह रही है। मानो देखना ही उसका काम है। न जाने कितने इसी तरह आये और गये और वह यों ही खड़ी देखती रही। मैं सोचने लगा, उसके जीवनकी सार्थकता किसमें है?

उसके घरके बाहर दरवाजेपर एक कुत्ता बैठा रहता था। घरके भीतर आँगनमें एक गाय बँधी रहती थी। बरामदेमें एक बिल्ली ताकती रहती थी। कमरेके भीतर एक पिंजड़ेमें एक मैना थी। इन चार जन्तुओंको छोड़कर और किसीको उसके घरमें आश्रय नहीं मिला। अपने इन आश्रित प्राणियोंपर भी उसका वही निर्विकार भाव था। यदि कुत्ता कभी दरवाजेको लाँघनेकी इच्छा करे तो उसे तुरन्त ही दण्ड मिलता था। यदि गाय कभी बरामदेपर चढ़ जाय तो यह सम्भव नहीं कि वह उसके शासन-दण्डसे बचकर लौट जाय। इसी प्रकार बिल्लीने यह कभी साहस नहीं किया कि वह कमरेके भीतर चली जाय। उसने इनके लिए जो सीमा निर्दिष्ट कर दी थी वह दुर्लंघ्य थी। जिस किसीने उस सीमाका अतिक्रमण किया उसे अवश्य दण्ड सहना पड़ता था। परन्तु, यदि वे अपनी मर्यादाको न छोड़ें, अपने स्थानमें ही बैठे रहें, तो उन्हें कष्ट भी कभी सहना नहीं पड़ता था। दरवाजेपर ठीक समयमें वह चारा और पानी दे जाती थी। बिल्ली और मैनाको कभी कोई शिकायत करनेका मौका नहीं मिला। वह चुपचाप सभीका प्रबन्ध नियमपूर्वक कर देती थी।

एक बार मैं बीमार पड़ा। बड़ा कष्ट होने लगा। उसे खबर मिली। वह चुपचाप आकर सारा काम करने लगी। जब मैं अच्छा हो गया, तब मैंने उसके चरण छूकर कहा, "तुम्हींने मेरी प्राण-रक्षा की है, तुम मेरी मा हो।" अबतक उसके आश्रयमें चार ही प्राणी रहते थे, मैं पाँचवाँ हो गया। उसने मेरा भार भी स्वीकार कर लिया। मैं कमरेके भीतर आ-जा सकता था, परन्तु उस कमरेसे लगा हुआ जो दूसरा कमरा था वहाँ मेरा भी प्रवेश निषिद्ध था। जब मैं आता, तब वह उस कमरेका दरवाजा बंद कर देती थी।

कुछ दिनोंके बाद वह बीमार पड़ी। उसे ज्वर आने लगा। कुछ दिनों तक तो उसने कुछ परवाह नहीं की,—अपना सब काम नियमपूर्वक करती गई। परन्तु, एक दिन वह बिलकुल अशक्त हो गई। जब उसकी दासी काम करनेके लिए आई तब उसने देखा कि वह बिलकुल अचेत पड़ी हुई है। उसने आकर मुझे खबर दी। उसी दिन सबसे पहले मैंने उसके शयन-गृहमें प्रवेश किया। मैंने देखा कि उस कमरेमें तीन पलंगोंपर तीन बिस्तर लगे हैं। एकपर तो वह पड़ी हुई थी और दोपर स्वच्छ चादरें बिछी हुई थीं। मैंने उसके सिरपर हाथ रखकर देखा, वह खूब गर्म था। मैं एक कुर्सीपर बैठ गया। मैंने एक चिट्ठी लिखकर दासीके हाथ दी और कहा, "जाओ, अविनाश बाबूको यह चिट्ठी दे आओ।" अविनाश बाबू हमारे मुहल्लेमें एक डाक्टर थे। दासी चली गई। मैं चुपचाप बैठे बैठे उन शून्य बिस्तरोंको देखता रहा।

थोड़ी देरमें उसने आँखें खोलीं। मैंने पूछा—आपकी तबीयत कैसी है? उसने मेरी ओर देखा तो अवश्य; परन्तु, मुझे ऐसा जान पड़ा कि उसके नेत्र किसीको खोज रहे हैं। क्षण-भरके बाद उसने कहा—'शान्ता!'

मैं कुछ नहीं समझ सका। मैंने पूछा—आप किसे पुकार रही हैं ? आपकी दासी डाक्टरको बुलाने गई है।

उसने मानो मेरी बात सुनी ही नहीं। वह फिर कहने लगी, "शान्ता, तू चक्कीके पास क्या कर रही है बेटी, देखती नहीं तेरे दादा कबसे खड़े हैं, पैर धोनेके लिए पानी दे जा।" इसके बाद वह चुप हो गई।

मैं कुछ घबड़ा-सा गया। यह क्या कह रही है, कौन शान्ता है, कौन उसका दादा है ! इतनेमें वह फिर कहने लगी—अरे तो, शोर क्यों मचा रहे हो ? लाती तो हूँ। शान्ताको कहती हूँ, वह कुछ सुनती नहीं।

इतना कहकर वह बिस्तरेसे उठ खड़ी हुई और बाहर जाने लगी। मैंने पूछा—आप कहाँ जा रही हैं, आपकी तबीयत खराब है, आप लेटी रहिए। आपको क्या चाहिए, मैं ला दूँ।

परन्तु उसने मेरी कोई बात नहीं सुनी। वह चुपचाप दूसरे कमरेमें चली गई और वहाँसे एक लोटेमें पानी भरकर ले आई और उसे पलँगके नीचे रख दिया। इसके बाद वह फिर कहने लगी—तुम्हारे खड़ाऊँ तो मिलते नहीं। न जाने तुमने कहाँ रक्खे। जाते कहाँ हो, पैर धोकर जल्दी आओ। मैं तुम्हारे जल-पानका सामान ले आई हूँ। कबतक रक्खे खड़ी रहूँगी। मुझे घरके और भी काम हैं। वह देखो, बच्चा भी रोने लगा।

यह कहकर वह दूसरे पलंगपर चली गई। मैं मंत्र-मुग्धकी तरह बैठे बैठे देखता रहा। वह दूसरे पलंगपर बैठकर इस तरह गुनगुनाने लगी कि मानो किसी बच्चेको सुलानेकी चेष्टा कर रही है। मैं समझ गया कि यह ज्वरका प्रलाप नहीं, यह उसके अन्तस्तलकी गूढ़

वेदनाका प्रलाप है। यह पतिहीना, पुत्रहीना, अभागिनी जीवन-भर सौभाग्य-सुखसे वञ्चित रही। इसीसे इसने कल्पनाद्वारा अपने पति, पुत्र और पुत्रीको जीवित कर रक्खा है। जान पड़ता है, इतने दिनों तक यह अपने इन्हीं कल्पित पति और पुत्र-पुत्रीके साथ अपना जीवन यों ही व्यतीत करती आ रही है।

फिर वह कहने लगी—मैं तो इस लड़कीके खेलसे तङ्ग आ गई। तुमने इसके लिए गुड़ियाँ क्या ला दीं मेरे लिए आफत ला दी है। जब देखो तब वह उन्हींको लिये बैठी रहती है। चुपचाप बैठी रहे, तो भी गनीमत। पर यह लड्डुओंको तोड़ तोड़कर उन्हें बाँट रही है। न आप खाती है, न दूसरोंको खाने देती है।—गुड़ियोंको खिलाती है। सच कहती हूँ शान्ता, अगर ज्यादा ऊधम करेगी तो तेरे लिए बनारसी साड़ी नहीं खरीदूँगी।

क्षण-भरके लिए मैं भी उसके कल्पनाके प्रवाहमें बह गया। मुझे सचमुच ऐसा मालूम होने लगा कि एक लड़की अपनी गुड़ियाको मिठाई खिला रही है। उस रोगिणी विधवाका वह कृश शरीर भी मेरे नेत्रोंके आगे लुप्त हो गया। मैंने देखा कि एक बीस वर्षकी युवती अपने बच्चेको लिये बैठी है। उसके लम्बे लम्बे केश कमर तक लटक रहे हैं और उसका पति बैठा बैठा हँस रहा है। गृहस्थ-जीवनका इतना सुखद चित्र तो मैंने कभी नहीं देखा था। यदि यह स्वप्न है, तो भगवान्, मेरा स्वप्न कभी भङ्ग न हो।

वह फिर कहने लगी—तुम यहाँ मत बैठो। जाओ, जरा घूम आओ। नहीं तो तुम्हारी तबीयत खराब हो जायगी।—डरो मत, मुझे कुछ होनेका नहीं। भगवान् औरतोंको जल्दी मृत्यु नहीं देता।—हाँ,

एक काम करो। चौकसे शान्ताके लिए एक बनारसी साड़ी ले आना। कल राय साहबके घर बरात आनेवाली है। वह देखने जायगी।—क्या कहा, 'तुम्हारे लिए भी?' मेरे लिए कभी लाये हो कि आज लाओगे! खैर मुझे जो पहनना होगा पहन लूँगी। पर शान्ताके लिए साड़ी लाना न भूलना। क्यों शान्ता, अब तो खुश हो गई?—यह लो तुमने मोहनकी बात सुनी? वह कहता है कि साइकल लाओ तो स्कूल जायँगे।—अरे तो मुझे क्यों दिक कर रहा है? माँग न अपने दादाजीसे।

भगवान्, तुमने नारीके हृदयमें इतना स्नेह छिपा दिया है? कौन जानता था कि यह विधवा अपने हृदयमें स्नेहकी इतनी बड़ी निधि लेकर अपना जीवन व्यतीत कर रही है।

उसके बाद वह फिर संज्ञा-शून्य हो गई। अविनाश बाबू आये। उन्होंने दवा दी, पर उससे कुछ लाभ न हुआ। दो घंटेके बाद उसकी मृत्यु हो गई। मरनेके पहले उसने एक बार फिर आँखें खोलीं और कहा—कबसे खड़ी हूँ, तेरी राह देख रही हूँ।

जान पड़ता है कि शान्ताकी उस अदृश्य छबिको लेकर वह सदाके लिए चली गई। वही उसके अन्धकारमय जीवनकी कनक-रेखा थी।

उन्माद

हरिनाथ वावू खूब निपुण डाक्टर थे। अपने व्यवसायमें उन्हें यथेष्ट सफलता हुई थी। लोगोंका उनपर बड़ा विश्वास हो गया था। तो भी लोग उनसे संतुष्ट नहीं थे। कुछ तो उन्हें 'नर-पिशाच' तक कहते थे। इसमें संदेह नहीं, हरिनाथ वावूमें थोड़ी भी दया नहीं थी। चाहे कोई कैसी भी दशामें हो, विना फीस लिये डाक्टर वावू जाते नहीं थे। कितने ही असमर्थ गृहस्थ उनके पास गये, पर सबको हताश होकर लौट आना पड़ा। उनसे पहले कोई भी दवा नहीं कराता था पर जब रोग अन्य डाक्टर और वैद्योंके लिए असाध्य हो जाता था तव हताश होकर लोग उन्हें ही बुलाते थे। हरिनाथ वावूके हाथमें केस आते ही असाध्य रोग भी साध्य हो जाते थे। इसलिए, नर-पिशाच होकर भी हरिनाथ वावूको कामका अभाव न था।

एक वार मुझे भी उनके पास जाना पड़ा। मिनीका ज्वर खूब वढ़ गया था। किसीकी चिकित्सासे कुछ लाभ नहीं हुआ तब हरिनाथ वावू आये। न जाने उनमें ऐसी कौन-सी शक्ति थी कि थोड़े ही दिनोंमें मिनी अच्छी हो गई। पाँच सौके नोट लेकर मैं उनके पास अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए गया। कार्ड भेज देनेपर हरिनाथ वावू स्वयं आकर मुझे अपने कमरेमें ले गये। जव हम लोग बैठ गये, तब मैंने पाँच सौके नोट निकालकर कहा, "डाक्टर वावू, आपने हम लोगोंको आजीवनके लिए अपने उपकार-पाशसे बद्ध कर लिया है। हम लोग आपको दे क्या सकते हैं? पर हम जन्म-भर

आपका उपकार मानते रहेंगे।" हरिनाथ बाबू नोट लेकर कुछ देर चुप रहे। मैंने देखा, उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये थे। मैं सोचने लगा, आज इस नृशंसमें कोमलता कैसी? इतनेमें हरिनाथबाबूने कहा—

"विनोद बाबू, मैंने उपकार नहीं किया है। मैं उपकार करता भी नहीं हूँ। मैंने जो कुछ किया सब इन नोटोंके लिए। आपको आश्चर्य होता होगा कि इतनी सम्पत्ति रहनेपर भी मैं धन-संचय कर रहा हूँ। मेरे न तो कोई संतान है, न कोई बन्धु-बान्धव ही है। मैं अकेला हूँ। मैं जानता हूँ, यह मेरी वृद्धावस्था है। मैं जानता हूँ, मेरा मृत्यु-काल सन्निकट है। धनसे मुझे कुछ लाभ नहीं है। तो भी मैं धन संचय करूँगा, मृत्यु-काल तक संचय करता रहूँगा।"

यह कहते कहते हरिनाथ बाबू खड़े हो गये। उनका शरीर काँपने लगा। उनकी यह दशा देख मैं डर गया। उन्हें शान्त करनेके लिए मैं कुछ कहना ही चाहता था कि हरिनाथ बाबू फिर कहने लगे, "विनोद बाबू, मुझे शान्ति नहीं चाहिए। हृदयकी इस विषम-ज्वालाको लेकर ही मैं मरूँगा। आज पैंतीस वर्षसे मैं यह ज्वाला हृदयमें रख रहा हूँ। बाबू, मैं जानता हूँ आप लोग मुझे कैसा समझते हैं, पर मैंने जैसा कुछ अनुभव किया उसे मैं ही जानता हूँ। विनोद बाबू, आज तुम्हारी बातोंसे मुझे उस घटनाका स्मरण हो आया है जिसे इस धन-तृष्णाकी प्रबल-ज्वालामें पड़कर मैं भूल जाना चाहता था। मैं तुमसे अपनी जीवन-कथा कहे देता हूँ। विनोद बाबू, तब तुम जान सकोगे मैं ऐसा नर-पिशाच क्यों हो गया।

"आज पैंतालिस वर्ष हो गये, मैं बी० एस-सी० पास कर घर लौटा था।—मेरा घर हरिपुरमें था। घरमें विधवा माता और वर्ष-भरकी बहिन थी। बहिनके जन्म होते ही पिताकी मृत्यु हो गई थी, इसलिए मैंने

अपनी बहिनका नाम अभागिनी रक्खा था। पिताकी मृत्यु हो जाने-पर हम लोग वर्ष-भर बड़ी तकलीफमें रहे। माताके अनुरोधसे मुझे कालेज जाना पड़ा और दासीकी वृत्ति स्वीकार कर माता गाँवमें रही। दो-चार लड़कोंको पढ़ाकर मैं अपना खर्च निकाल लेता था। घरके लिए भी जो कुछ बचा करता, भेज देता। इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत कर मैं घर लौटा।

"उस समय माताकी दशा देखकर मुझे बड़ी वेदना हुई। गाँवमें कई लोग ऐसे थे जो यदि चाहते तो हमें सहायता दे सकते थे। पर किसीने कुछ नहीं किया। मेरे आनेपर माताको बड़ी प्रसन्नता हुई थी। मैं भी भविष्य-सुखका स्वप्न देखने लगा था। इतनेमें मेरी माताको बुखार आने लगा। वर्षा-काल आ गया था। घर खूब टूट-फूट गया था। एक कमरेको छोड़ दूसरा कमरा भी नहीं था। वह भी ऐसा नहीं था कि उसमें मेरी ज्वरसे पीडित माता रह सके। मैंने पड़ोसके लोगोंसे एक कमरा देनेके लिए बड़ी प्रार्थना की, पर किसीने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी। उन्हें विश्वास हो गया था कि मेरी माताको प्लेग हो गया है।

"एक दिन माताकी पीड़ा खूब बढ़ गई। मैंने पासके गाँवसे एक डाक्टर बुलानेका विचार किया। पर कोई भी जानेके लिए उद्यत नहीं हुआ। मैं स्वयं जानेके लिए प्रस्तुत हुआ, पर माता और अभागिनीको किसके आश्रयमें छोड़ूँ? मैंने एकसे कहा, 'भाई, घरमें स्थान भले ही मत दो पर हमारे घर जाकर मेरी माताके पास दो घंटेके लिए बैठे रहो। मैं तब तक डाक्टरको बुलाये लाता हूँ।' पर वह प्लेगके भयसे नहीं आया।

"तब मैं जगदीश्वरका नाम ले अभागिनीको माताकी गोदमें छोड़कर दौड़ता हुआ डाक्टरके यहाँ गया। डाक्टर बाबू घरमें

विश्राम कर रहे थे। अपने विश्राममें बाधा होते देख क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने चिल्लाकर कहा, 'निकाल बाहर करो।' मैं हताश होकर लौट आया। घर आनेपर देखा कि अभागिनी मृत माताकी गोदमें सो रही है।

डाक्टर हरिनाथ मिश्र आगे कह नहीं सके, कुछ देरतक चुपचाप बैठे रहे। थोड़ी देरके बाद हृदयके उद्वेगको रोक कर फिर कहने लगे, "विनोद बाबू, अधिक क्या कहूँ, किसी प्रकार माताका अंतिम संस्कार कर मैं कलकत्ते चला आया। मातृ-पितृ-हीन अभागिनीको हृदयसे लगाकर मैंने कुछ दिनोंतक उसकी ज्वाला शान्त की। ढूँढ़नेपर मुझे पचास रुपयाका एक ट्यूशन भी मिल गया। मैंने डाक्टर होना निश्चय कर कालेजमें नाम लिखा लिया। पाँच वर्षके अविराम परिश्रमसे मैं डाक्टर हुआ। तब तक अभागिनी छह वर्षकी हो गई। तब मैं कुछ निश्चिन्त हो गया।

"मुझे अपने व्यवसायमें सफलता होने लगी। संसारमें कुछ नाम कर जानेकी इच्छासे मैं खूब परिश्रम किया करता था। अपने उद्योगमें संलग्न होनेके कारण मैं कुछ ही दिनोंमें अभागिनीकी ओर कम ध्यान देने लगा। एक दिन मुझे विज्ञान-परिषत्की ओरसे निमंत्रण मिला। मुझे उक्त विद्वन्मण्डलीने क्षयरोगपर व्याख्यान देनेके लिए कहा था। नाम करनेका ऐसा सुअवसर पाकर मैं खूब आनन्दित हुआ। घर आकर मैं अपने व्याख्यानका विषय देखनेमें लग गया। देखते देखते मुझे एक नवीन बात सूझी। मैं अपने आविष्कारसे अक्षय्य कीर्ति सम्पादन करनेकी इच्छाके वशीभूत हो उसकी परीक्षा करने लगा। इतनेमें अभागिनीने आकर कहा, 'भैय्या।' मैंने रुष्ट होकर कहा, 'जा, जा, मैं अभी अपने काममें लगा हूँ।'

"भैय्यासे अपमानित होकर अभागिनी अपने कमरेमें चली गई। रात-भर मैं अपने आविष्कारमें लगा रहा, मुझे अपनी अभागिनीकी

सुधि नहीं थी। और दूसरे दिन भी मैं शीघ्र भोजन कर बिना अभागिनीको देखे विज्ञान-परिषद्-भवनमें अपने अपूर्व आविष्कारपर व्याख्यान देनेके लिए चला गया।

"कहना नहीं होगा, मेरे उक्त आविष्कारसे सर्वत्र मेरा नाम फैल गया। संसारके प्रतिष्ठित विद्वानोंमें मेरी गणना होने लगी। बड़े बड़े डाक्टरोंने आकर मुझे बधाई दी। अनेक लोगोंसे मुझे निमंत्रण मिला। मैं उल्लास-पूर्ण हृदयसे घर लौटा।

"घर आते ही दासीने कहा 'अभागिनीको आज दिन-भरसे खूब ज्वर है।' मेरा हृदय काँप उठा। मैं शीघ्रतासे अभागिनीके कमरेमें आया। उसे सुधि थी। मैंने तुरन्त ही उसे गोदमें उठा लिया। देखा, उसका सब शरीर ज्वर-तापसे जल रहा है। मैंने विदीर्ण-हृदयसे पुकारा, 'अभागिनी!' अभागिनीने आँख खोलकर कहा, 'भैय्या, पानी।' मैंने तुरन्त ही उसे पानी दिया। पानी पीकर अभागिनी कहने लगी, 'भैय्या, मुझे छोड़कर मत जाओ, मुझे डर लगता है।' मैंने रोकर कहा 'अभागिनी बहिन, मैं अब तुझे छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।'

"मैं रातभर अभागिनीकी चिकित्सा करता रहा, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। उसकी दशा खराब ही होती गई। अन्तमें उषःकालके समय, जब समस्त पृथ्वीमें आलोक फैल रहा था, अभागिनीने मुझे सदाके लिए अन्धकारमें डालकर प्राण त्याग दिये। मैं उसके मृत देहको गोदमें लिये बैठा रह गया। लोक-सेवाका फल मुझे मिल गया।

"विनोद बाबू, अब आपका अधिक समय नहीं लूँगा। अभागिनीकी मृत्यु होनेपर मेरे हृदयकी प्रसुप्त ज्वाला जाग्रत हो उठी। संसार मुझे नर-पिशाच कहता है, कहे। मुझे लोकापवादका भय नहीं है। संसारने मुझपर कौन-सा उपकार किया है कि मैं उसकी

सेवा करूँ? सच तो यह है कि संसार रण-भूमि है। दया-भित्तासे प्राणोंकी रत्ता नहीं होती, उसके लिए युद्ध करना पड़ता है। दया, प्रेम, सहानुभूति आदि भ्रम-मात्र हैं। यहाँ केवल क्रूरता है। यदि जगदीश्वर है तो वह अत्यन्त क्रूर है। कदाचित् भगवती जगदम्बाके सामने हजारों पशुओंका वलिदान केवल इसी अभिप्रायसे किया जाता है कि निर्बलों और निस्सहायोंका नाश हो। जिसमें शक्ति नहीं है उसकी स्थितिसे लाभ ही क्या? इसलिए ही भगवती चण्डिका पशुओंका रक्त-पान करती है। वह संसार-रणभूमिमें निर्बल मनुष्योंका ही संहार करती है। विनोद बाबू, कोई इसे माने चाहे न माने, मैं मानता हूँ।

"मैंने उपकार नहीं किया है। मैं उपकार नहीं करूँगा। मैंने संसारको खूब देख लिया है; संसारने भी मुझे देख लिया। मुझे न तो अब आशा है, न भय है, न संकोच है। भविष्य अन्धकारपूर्ण है। जो कुछ होगा मैं सह लूँगा। यदि मुझे नरककी विषम यंत्रणा सहनी पड़े तो मैं उसके लिए भी प्रस्तुत हूँ।

"पर मुझे धनकी तृष्णा नहीं है। लोग समझते हैं मेरे पास अतुल सम्पत्ति है। पर सब भूल है। मैं धनकी लालसा नहीं रखता। मैं किसीको कुछ नहीं देता। पर जो कुछ पाता हूँ नष्ट कर डालता हूँ।"

डाक्टर बाबू फिर कुछ न बोले। मेरी ओर स्थिर-दृष्टिसे देखने लगे। इतनेमें टन् टन् कर आठ बज गये। मैं घर जानेके लिए उनसे विदा माँगने लगा। हरिनाथ बाबूने मुझसे हाथ मिलाकर कहा, "जाइए। मैं अब इन नोटोंसे यज्ञ करूँगा।" मैं घर लौट आया।

अमावास्याकी रात्रि थी। सर्वत्र अन्धकार था। मैंने खिड़की खोलकर देखा कि अन्धकारमें पड़कर खद्योत अपनी अल्प ज्योतिको व्यर्थ नष्ट कर रहा है।

गुड़िया

जीवनका मतलब समझना कठिन है। विधाताने जगत्‌में अस्थिरताकी सृष्टि क्यों की है? चञ्चलाकी चमककी तरह जीवनमें क्षण-भर ज्योति उदित होकर फिर क्यों लीन हो जाती है?—मनुष्य संसारके अनन्त कार्योंमें व्याप्त रहकर कभी कभी ऊपरकी ओर दृष्टि डालता है। सुनील प्रशान्त अनन्त आकाश फैला हुआ है। नीचे शस्य-श्यामला वसुन्धरा निश्चिन्त लेटी हुई है। दोनों स्थिर हैं, दोनों स्मरणातीत कालसे निश्चल होकर ठहरे हुए हैं। पर इन दोनोंके मध्यवर्ती मनुष्यके जीवनमें अस्थिरता है, चञ्चलता है। न जाने कबसे जीवनका यह अविराम स्रोत प्रवाहित हुआ है। थोड़ी भी शान्ति नहीं है। इस जीवन-प्रवाहमें पड़कर हम आगे ही बहते चले जाते हैं, न जाने कहाँ इसका अन्त होगा। संध्याका समय था। मैं अपने स्कूलकी क्रीड़ा-भूमिपर अकेला बैठा हुआ था। सब लड़के चले गये थे। फूटबाल-ग्राउण्ड अन्धकारमय हो रहा था। मैं उसी अन्धकारमें बैठकर अपने जीवनकी अतीत बातें सोच रहा था।

बाल्य-कालके दृश्य उदीयमान ताराओंकी तरह मेरे हृदयाकाशमें एक एक कर प्रकट होने लगे। मेरी वह आशा, मेरा वह सुख-स्वप्न मेरी वे अभिलाषाएँ सब कहाँ गईं? जीवनके प्रभात-कालमें मैंने जिस ज्योतिका दर्शन किया था वह अन्धकारमें लीन हो गई। सब तो वैसे ही थे। यही गाँव है, यही नदी है और यही स्कूल है। सब कुछ जैसे पहले थे वैसे ही हैं। केवल मैं ही दूसरा हो गया

हूँ। अब वे भाव नहीं, अब वे आशाएँ नहीं। एक बार मैंने जो अनुभव किया था वह अब स्वप्नके समान केवल स्मृतिमें रह गया है।

अब सहसा मेरी मोह-निद्रा भंग हो गई। मुझे ज्ञात हुआ कि वर्तमानमें मेरी कुछ स्थिति है क्योंकि उसी समय वीरसिंहने आकर कहा, "मास्टर साहब, एक हॉकी-स्टिकका पता नहीं है।" मैं दीर्घ निःश्वास लेकर उठा और वीरसिंहके साथ जाकर सब सामान देखने लगा। सचमुच एक स्टिक नहीं थी। अब रात हो गई थी, उसका पता लगाना मुश्किल था। इस लिए वह काम दूसरे दिनके लिए छोड़कर मैं घर लौटा।

रास्तेमें पंडित कृष्णरावका मकान मिलता था। जाते जाते एक बार मैंने उनके मकानके भीतर दृष्टि डाली। देखा, पंडितजी कुछ लिखनेमें व्यग्र हैं। आगे बढ़नेपर देवेन्द्र बाबूके मकानसे संगीतकी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। मैं ठहरकर सुनने लगा। कोई गा रहा था— "कहूँ किससे मैं मनकी बात।" इसके बाद एक घरसे किसी शिशुकी रोदन-ध्वनिके साथ किसी स्त्रीके हँसनेकी आवाज आई। रोदन और हास्यका संमिश्रण देखकर मैं अपने आप कहने लगा, "यही तो संसार है। एक ओर हाहाकार है और दूसरी ओर संयोग।"

इसके बाद कुछ सोचनेका अवसर नहीं मिला। इन्दिराके एक 'मास्टर' शब्दसे मेरी दार्शनिक भावना नष्ट हो गई। मैं उसे गोदमें लेकर भीतर घुसा भी नहीं था कि पार्वतीने आकर कहा "इधर कहाँ चले? आज मेरी गुड़ियाका विवाह है। पहले उधर चलो।" पार्वतीका अनुरोध मैं टाल न सका। मुझे उसके साथ जाना ही पड़ा।

भीतर जाकर मैंने देखा कि पार्वतीने अपनी गुड़ियाके विवाहका बड़ा आयोजन कर रक्खा है, बड़ी तैयारी की गई है। आँगनमें बीचोंबीच मंडप बनाया गया है। वह फूलोंसे खूब सजाया गया है। चारों तरफ मुहल्लेकी लड़कियोंके झुंड हैं।

मुझे ले जाकर पार्वतीने एक अच्छे स्थानपर बैठा दिया। मेरे बैठ जानेपर विवाहका कार्य आरम्भ हुआ। वर-वधूके मंडपमें प्रवेश होते ही मैंने कहा, "पार्वती!, तुमने सब ठीक किया, पर एक बात भूल गई हो।" पार्वतीने आग्रहसे पूछा, "वह क्या?" मैंने कहा, "पुरोहित तो है ही नहीं। बिना पुरोहितके कहीं विवाह होता है?"

पार्वतीने भूल तो स्वीकार कर ली, पर अब वह मेरे पीछे पड़ गई कि म ही पुरोहित बनूँ। मैंने उसे एक बात समझानेमें अपनी ओरसे खूब प्रयत्न किया कि कायस्थको पुरोहितका आसन ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है; पर पार्वती क्यों मानने लगी। अन्तमें पुरोहितका आसन ग्रहण करना पड़ा। विवाह आरम्भ हुआ और यह कहनेकी जरूरत नहीं कि वह विधिपूर्वक निष्पन्न हुआ। विवाहके अन्त होनेपर, जब पार्वती वर-वधूको उठाकर भीतर ले जाने लगी, तब मैंने उसे रोककर कहा, "यह क्या अन्याय कर रही हो, बिना पुरोहितको दक्षिणा दिये तुम वर-वधूको नहीं ले जा सकतीं।" पार्वतीने कहा, "अच्छा फूफा, अभी ले जाने दो। कल तुम्हें एक रूमाल बुनकर दे दूँगी" तब मैंने जाने दिया। दूसरे दिन पार्वतीने मुझे एक रूमाल दिया। मैंने उसे सन्दूकमें रख छोड़ा।

* * * *

ज्यों ज्यों समय जाता है, त्यों त्यों हम लोगोंका कार्य-भार गुरुतर होता जाता है। उन्नीस वर्ष व्यतीत हो जानेपर मैंने अपनेको उस

अवस्थामें पाया जब मनुष्य अपनी चिन्ता छोड़कर दूसरोंकी ही चिन्तामें लगा रहता है। इन उन्नीस वर्षोंमें मैं फिर दूसरा ही आदमी हो गया। मुझे अब अपने परिवारकी ही चिन्ता रहती थी। एक जगहसे दूसरी जाना मेरे लिए एक तो वैसे ही कष्टदायक था, फिर जब मुझको सागर ऐसे अपरिचित स्थानमें जानेकी आज्ञा हुई, तब तो एक बार इस्तीफा देकर घर चले जानेकी इच्छा हुई।

फिर सोचा, चलो, साल-भरकी बात है, एक बार सागरमें भी रहकर देख लें और जब तक घरका प्रबन्ध न हो तब तक परिवार ले जाना अच्छा नहीं, यह सोचकर मैंने अकेले ही जाना निश्चय किया। दूसरे दिनकी ट्रेनसे सागरके लिए रवाना हुआ। शामको मैं बिलासपुर पहुँचा। गाड़ीसे उतरकर, नौकरको सामान सँभालनेके लिए कहकर, मैं हाथ-मुँह धोनेके लिए बाहर नलपर गया। लौटकर आकर देखता हूँ कि बाबू प्यारेलालजी खड़े हुए मेरे नौकरसे बातें कर रहे हैं। मैं खूब उत्साहसे उनसे मिला। कुछ देर इधर-उधरकी बातें होती रहीं। फिर जब उन्होंने सुना कि मैं उसी दिनकी गाड़ीसे सागर जानेकी इच्छा करता हूँ, तब तो वे बड़े बिगड़े। आखिर उस दिन मेरा जाना नहीं हुआ। मुझे उनके घर एक दिन टिक जाना पड़ा। नौकरको पीछेसे सामान लानेके लिए कहकर मैं उनके साथ चला।

* * * *

सन्ध्या हो गई थी। स्कूलके लड़के हाथमें हॉकी-स्टिक लिये हुए प्रफुल्ल-वदन चले आ रहे थे। इधर मैं चालीस वर्षके जीवनका भार लेकर जा रहा था।—जीवनका विपर्यय। खैर, किसी तरह हम लोग घर पहुँचे। तब तक रात हो गई थी। बाहरके कमरेमें कुछ देर बैठकर बातें कीं। फिर मैं भीतर गया। देखा, आँगनमें लड़कियोंकी

भीड़ लग रही थी। पूछनेसे मालूम हुआ कि आज गुड़ियाका विवाह है।

मुझे उन्नीस वर्ष पहलेका दृश्य दिखाई दिया। सब तो वैसा ही है; भेद इतना ही है कि आज पार्वतीके स्थानमें उसकी लड़की सुशीला अपनी गुड़ियाका विवाह कर रही है। मैं खानेके लिए नहीं गया। वहीं अपने मनसे पुरोहितका आसन ग्रहण कर मैंने सुशीलाकी गुड़ियाका विवाह कराया और वर-वधूको अन्तःकरणसे आशीर्वाद दिया।

पार्वती खड़ी देख रही थी। विवाह हो जानेपर दक्षिणास्वरूप उसने हँसते हँसते मुझे एक दूसरा रूमाल दिया। जब मैं खा-पीकर बाहरके कमरेमें आया तब मैंने संदूक खोलकर अपना पुराना रूमाल निकाला। फिर मैंने अतीत और वर्तमानको एक ही सूत्रमें बाँध दिया।

इसके बाद भगवानकी प्रार्थना कर मैंने ऊपर आकाश-मंडलपर दृष्टिपात किया, देखा कि अनन्तके वक्षःस्थलपर द्वितीयाका बाल चन्द्रमा हँस रहा है।

छाया

जो बात तर्क-सम्मत नहीं उसपर विश्वास नहीं करना चाहिए। विद्वानोंकी यही राय है। इसलिए मैं अपने जीवनकी एक घटनाका हाल किसीको नहीं बतलाता। मैं जानता हूँ कि यह तर्कका सामना नहीं कर सकती। यदि मैं किसीसे अपने जीवनका हाल कहने बैठूँगा, तो वह अपने तर्क-शास्त्रके द्वारा मेरे जीवनकी थाह लेने लगेगा।—'क्या यह सम्भव है?' उसके इस प्रश्नका उत्तर मैं कैसे दूँ? यह बात सम्भव नहीं,—यह तो सम्भव ही नहीं, यह तो हो गई है; यदि तुम विश्वास नहीं करना चाहते तो मत करो।

पर इसमें सन्देह नहीं कि तर्क-शास्त्र जीवनका रहस्योद्धार नहीं कर सकता। मनुष्योंके जीवनमें ऐसी बातें भी हुआ करती हैं जो किसी प्रकार समझाई नहीं जा सकतीं। सच तो यह है कि जिनसे हमारे भविष्य भाग्यका निश्चय होता है, उन्हें हम अपनी बुद्धिसे जान ही नहीं सकते। समुद्रकी तरंगके समान वे न जाने कहाँ उठती हैं और किधर जाती हैं। पर उनसे धक्का खाकर हमारे जीवनकी क्षुद्र नौका भव-सागरमें डूबने-उतराने लगती है। मैं तो यह मानता हूँ कि हम लोगोंके जीवनमें कोई अदृष्ट शक्ति काम कर रही है। आप चाहे उसे दैव कहें या कुछ और कहें; पर उसीके चक्रमें पड़कर सारा संसार घूम रहा है। उसकी उपेक्षा करना हमारे सामर्थ्यके बाहरकी बात है।

कौन जानता था कि शशिकला मेरे जीवनकी सहचरी होगी। पर उसी अज्ञात शक्तिसे प्रेरित होकर मैंने उसका पाणिग्रहण किया।

अंतमें उसी शक्तिकी प्रेरणासे,—किन्तु वह हाल तो मैं पीछे कहूँगा, पहले मैं अपने विवाहकी ही बात कहूँगा।

पिताजीका स्वर्गवास होनेपर मैं इलाहाबाद चला गया। उन दिनों वहाँ स्वदेशी आन्दोलनकी खूब धूम थी। मैंने भी स्वदेशी व्रत धारण किया। पिताजी मेरे लिए अच्छी सम्पत्ति छोड़ गये थे। मुझे कमाने-खानेकी फिक्र थी ही नहीं, इसलिए, मैं इलाहाबादके सभी सार्वजनिक कार्योंमें सम्मिलित होने लगा और थोड़े ही दिनोंमें मेरा नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया।

बुधवारका दिन था और पूर्णिमाकी रात्रि। चन्द्रमाके उज्ज्वल प्रकाशमें पृथ्वी हँस रही थी। वसंतकालकी पवन धीरे धीरे बह रही थी। मैं सेवा-समितिके वार्षिक अधिवेशनसे घर लौट रहा था। गाड़ी मैंने लौटा दी थी, इसलिए पैदल जा रहा था। कह नहीं सकता कि मैं किस विचारमें डूबा हुआ था। पर एकाएक किसीकी आवाज़ कानमें पड़ते ही मैं चौंक पड़ा। सिर उठाकर देखा, सामने एक घरके दरवाजेपर एक लड़की खड़ी हुई है। लड़कीके मुखपर विषादकी गहरी छाया थी जिसे देखकर न जाने क्यों मैं पीड़ित हो गया। मैंने उससे कहा—आपने शायद मुझे पुकारा है?

लड़कीने कहा—हाँ, क्या आप थोड़ा कष्ट उठावेंगे?

मैं—कहिए।

लड़की—पास ही डाक्टर सुशीलचन्द्र रहते हैं। उन्हें कृपा कर चिट्ठी दे आइए,—कह दीजिएगा, शीघ्र आनेकी कृपा करें।

लड़कीने ये बातें बड़ी धीरतासे कहीं। मैं सुनकर चकित हो गया। उसके हाथसे चिट्ठी लेकर मैं डाक्टर साहबके घरकी खोजमें निकला। घर ढूँढनेमें तकलीफ़ नहीं हुई। डाक्टर साहबको उस मुहल्लेमें

छोटे-बड़े सभी जानते थे। नौकरको पुकारकर मैंने उसके हाथ डाक्टर साहबके पास चिट्ठी भेज दी। डाक्टर साहब पाँच मिनटमें नीचे उतरे और मुझसे बोले—आप जरा बैठ जाइए। मैं आपके साथ चलता हूँ।

मैं बैठ गया। थोड़ी देरमें डाक्टर साहब जरूरी सामान लेकर मेरे साथ रवाना हुए। दरवाजेपर वह लड़की खड़ी हुई मिली। डाक्टर साहबने पूछा—शशि, कैसी तबियत है?

लड़कीने कहा—आप चलकर देखिए।

डाक्टर साहब ऊपर चले गये, मैं बाहर कमरेमें बैठा रहा। थोड़ी देरमें शशिकला नीचे आई और मुझसे कहने लगी—आप ऊपर जाइए, डाक्टर साहब आपको बुला रहे हैं।

मैंने ऊपर जाकर देखा कि डाक्टर साहब एक अर्धमूर्च्छित पुरुषकी सेवामें लगे हैं। उन्होंने इशारेसे मुझसे सहारा देनेके लिए कहा। मैंने तुरंत ही उनका आज्ञा-पालन किया। डाक्टर साहबने रोगीका मुख खोलकर दवा पिला दी। फिर उसे लेटाकर मुझे बैठनेके लिए कहा। पास ही एक कुर्सी पड़ी हुई थी। मैं उसीपर बैठ गया। पूछे जानेपर मैंने उन्हें अपना परिचय दिया। जब डाक्टर साहब मेरे पिताके मित्र निकले, तब तो वे बड़े प्रेमसे बातचीत करने लगे। हम लोग रात-भर बैठे रहे। जब रोगीको अच्छी तरह चैतन्य हो गया और किसी तरहका डर नहीं रहा तब मैं घर लौटा।

इस प्रकार पहले पहल शशिकलासे मेरा परिचय हुआ। उस दिनसे मैं प्रतिदिन शशिकलाके घर जाने लगा। रोगीको मैंने पहले शशिकलाका पिता समझा था, पर घनिष्ठता बढ़नेसे मालूम हुआ कि वे उसके पिता नहीं धर्म-पिता हैं। एक दिन चंगे हो जानेपर

हरिनंदन बाबूने मुझे शशिकलाका जीवन-वृत्तान्त सुनाया। उससे मालूम हुआ कि शशिकलाकी माता, जब शशिकला गर्भमें थी, तभी हरिनंदन बाबूके घर आई थी। उस समय हरिनंदन बाबूकी स्त्री जीवित थी। उसने शशिकलाकी माको बड़े प्रेमसे रक्खा। उसको इतना पता तो लग गया कि वह अपने पतिके बुरे व्यवहारसे चली आई है; परन्तु उसका पति है कौन, कहाँ रहता है, यह सब हाल उसने पूछा ही नहीं। इसके बाद शशिकलाका जन्म हुआ। इसके छः ही दिनोंके बाद उसकी माताकी मृत्यु हो गई। हरिनंदन बाबूके कोई संतान न थी। इसलिए, उनकी स्त्रीने शशिकलाको अपनी ही कन्या मानकर उसका लालन-पालन किया। जब शशिकला ग्यारह वर्षकी हुई तब हरिनंदन बाबूकी स्त्रीका भी देहान्त हो गया। तबसे घरका काम शशिकला ही सँभालती है।

शशिकलाका यह जीवन-वृत्तान्त सुनकर मेरा मन उसकी ओर और भी आकृष्ट हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि पहले मेरे हृदयमें उसकी ओर सहानुभूतिका भाव था; परन्तु, धीरे धीरे प्रेमने सहानुभूतिका स्थान ले लिया। मैंने उसके साथ विवाह करनेका निश्चय कर लिया। जब मैंने हरिनंदन बाबूसे विवाहका प्रस्ताव पेश किया तब वे क्षणभर चुप रहकर बोले—देवेन्द्र बाबू, मैं सच कहता हूँ, शशिकला साक्षात् लक्ष्मी है। परंतु, उसके जीवनके इस गुप्त भेदने उसको इस योग्य नहीं रक्खा है कि वह आपकी सहचरी हो सके। आपका वंश कुलीन है। शायद आपके बन्धु-बान्धव इस विवाहका विरोध करें।

पर मेरे ऐसे बन्धु-बान्धव नहीं थे जिनके विरोधकी मैं परवा करता। इसलिए, हरिनंदन बाबूने सहर्ष अनुमति दे दी। शुभ दिनमें मेरा विवाह हो गया। इसके छः महीने बाद मुझे कानपुर जाना पड़ा।

मैं जब गाड़ीपर चढ़ा तब मेरे साथ एक वृद्ध महाशय भी चढ़े। 'वृद्ध' इसलिए कहा कि उनके सब बाल सफेद हो गये थे; यों तो उनका शरीर खूब मजबूत जान पड़ता था। चेहरेपर कान्ति थी। मुझे देखकर उन्होंने कहा—आप कहाँ तक जायँगे ?

मैं—कानपुर जाऊँगा।

वृद्ध—अच्छी बात है, मैं भी कानपुर जा रहा हूँ। आपका घर कानपुरमें है ?

मैं—नहीं साहब, मैं इलाहाबाद रहता हूँ।

वृद्ध—वहीं आपका जन्म-स्थान है ?

मैं—जी नहीं, जन्म-स्थान तो मेरा वसंतपुर है।

वृद्ध—वसंतपुर ? आप लाला विश्वम्भरदयालुको जानते हैं ?

मैं चौंक पड़ा, क्योंकि यह मेरे पिताका नाम था। मैंने कहा—वह मेरे पिता हैं।

वृद्ध—अच्छा ! आपके पिताजी मेरे बड़े दोस्त थे। उनका और मेरा विवाह एक ही दिन हुआ था,—चैत्र सुदी पञ्चमी बुधवार संवत् १९५०।

मुझे कुछ हँसी आ गई। शायद ही किसी शिक्षित पुरुषको अपने विवाहकी तिथि और संवत् याद रहता हो। वृद्ध महाशय कुछ देर तक चुप रहे। न जाने क्या सोचने लगे। फिर बोले—आपका नाम ?

मैं—देवेन्द्रकुमार।

वृद्ध—देखिए, कानपुरमें आपको मेरे यहाँ ठहरना पड़ेगा। मेरी स्त्री वसंतपुरके सभी लोगोंको जानती है। वह उनका हाल जाननेके लिए हमेशा उत्सुक रहती है। आपके पिताको वह अच्छी तरह

पहचानती है। उनके विषयमें मुझसे उसने कई बार बातें की हैं। आपको देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता होगी।

वृद्धने ये सब बातें इतने आग्रहसे कहीं कि मैं उसके अनुरोधको टाल न सका। रास्तेमें वह अपनी स्त्रीकी ही बातें करता रहा। उसकी बातचीतसे मैं इतना समझ गया कि वह अपनी स्त्रीके रूप और गुणोंपर बेतरह मुग्ध है। उस समय न जाने क्यों मुझे अपनी शशिकलाकी याद आ गई।

कानपुर पहुँचनेपर मैं वृद्धके साथ बाहर आया। बाहर एक मोटर उसीकी थी। हम दोनों मोटरपर बैठकर रवाना हुए। थोड़ी ही देरमें मोटर एक बड़ी अट्टालिकाके सामने जाकर खड़ी हो गई। हम लोग मोटरसे उतरकर भीतर गये। बाहर कमरेमें एक दासी खड़ी थी। वृद्धके साथ मुझे देखकर वह चकित हो गई, पर बोली कुछ नहीं।

वृद्धने उसकी ओर देखकर कहा—विमला, भीतर सुशीलाको ख़बर दे दो कि बसन्तपुरके लाला विश्वम्भरदयालुके लड़के देवेन्द्र-कुमार आये हैं।

विमलाने मेरी ओर करुण दृष्टिसे देखा। मैं जान नहीं सका उसका मतलब क्या था। वह भीतर चली गई। इसके बाद वृद्धने मुझे नहाने-धोनेका कमरा बतलाया। मैं नहा-धोकर स्वस्थ चित्तसे एक आराम-कुर्सीपर बैठकर वृद्धके आतिथ्य-सत्कारका आयोजन देखने लगा।

थोड़ी देरके बाद वृद्ध महाशय आये और मुझे भीतर ले गये। दासी बाहर खड़ी हुई थी। जब मैं भीतर जाने लगा, उसने फिर मेरी ओर करुण दृष्टिसे ताका। उसने कुछ इशारा भी किया, पर मैं समझ न सका। एक कमरेके भीतर जाकर देखा कि गालीचेपर

चाँदीकी तश्तरीमें कुछ मिठाइयाँ रक्खी हैं, एक और तश्तरीमें मेवे रक्खे हैं, पास ही एक दूसरा गालीचा बिछा हुआ है। पर कमरेमें कोई था नहीं। वृद्ध महाशयने मुझे भीतर ले जाकर कहा—सुशीला, यही देवेन्द्रकुमार हैं।

मैंने सुशीलाको देखनेके लिए सिर उठाया, पर कमरेमें कोई नहीं था। मैंने चकित होकर वृद्धकी ओर देखा कि वह किससे बातें कर रहा है। पर वृद्धने मेरी अकचकाहटका कुछ भी ख्याल न कर कहा—हाँ, यही लाला विश्वम्भरदयालुके लड़के हैं। मुझे तो ऐसा याद पड़ता है कि तुम इन्हींके जन्मोत्सवमें विश्वम्भरदयालुके घर न्यौतेमें गई थीं। पचीस वर्ष हो गये।

फिर मेरी ओर लौटकर कहा—क्यों देवेन्द्रनाथ बाबू, आपकी उम्र पचीस ही वर्षकी होगी?

मैंने कहा—जी हाँ।

पर मैं विस्मित था कि यह बूढ़ा सनक तो नहीं गया है। यहाँ तो कोई है नहीं, बातें किससे कर रहा है! इतनेमें दासी आ गई। उसने मुझे उसी दृष्टिसे देखकर कहा—बाईजी, आपका पान-दान ले आऊँ।

इतना कहकर वह चली गई। मैं तब सब बातें समझ गया। जान पड़ता है, इस वृद्धकी स्त्रीका देहान्त हो गया है और यह अपनी कल्पनासे उसकी मूर्ति गढ़कर उससे बातें किया करता है। उसको यह कल्पित छाया सर्वथा सत्य प्रतीत होती है। उसको इसीमें सुख है, इसलिए दासी भी उसकी कल्पनाको भंग करना नहीं चाहती। अभीतक मैं वृद्धके विलक्षण व्यवहारको देखते समय बड़ी मुश्किलसे अपनी हँसी रोके हुए था। पर अब उसका यह प्रेमाधिक्य देखकर मेरी आँखोंमें आँसू भर आये। इतनेमें दासी

मुझे फल देने आई। मौका पाकर उसने धीरेसे कहा—आज सोलह वर्ष हुए बाईजीकी मृत्यु हो गई, पर उनको इसीमें सुख है!

इतना कहकर वह चली गई; मैं भी तब वृद्धकी कल्पित छायासे बातें करने लगा।

जल-पानके बाद जब मैं हाथ-मुँह धोकर बाहर कमरेमें आया तब दासीने मुझे वृद्धके अतीत जीवनकी कथा कही। विवाह होनेके बाद एक दिन एक छोटी-सी बातपर उसने अपनी स्त्रीको खूब भला-बुरा कहा। यहाँ तक कह दिया कि अब मैं तेरा मुँह नहीं देखूँगा। स्त्री भी अभिमानिनी थी। वह घर छोड़कर चली गई। तब वृद्धको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अन्तमें वह बीमार पड़ गया। बीमारीमें ही मस्तिष्ककी उत्तेजनासे उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी स्त्री लौट आई है। तबसे आजतक उसकी यही धारणा बनी हुई है।

इसके बाद वृद्ध महाशय भी हँसते हुए बाहर आये। मुझसे बोले—एक बातका मुझे बड़ा आश्चर्य है।

मैंने पूछा—कौन-सी बातका?

उसने कहा—देखिए, पन्द्रह वर्ष पहले मेरी स्त्री जैसी थी वैसी ही वह आज तक बनी है। मैं आपको बीस वर्ष पहलेका उसका चित्र दिखलाता हूँ। आप खुद देख लेंगे कि उसके तबके चेहरे और अबके चेहरेमें थोड़ा भी अन्तर नहीं आया है।

इतना कहकर उसने ड्राअरसे एक चित्र निकालकर मेरे हाथमें दिया। चित्र देखते ही मैं चौंक पड़ा, क्योंकि वह तो मेरी शशिकलाके चेहरेसे बिलकुल मिलता था। मैं जान गया कि यही मेरी शशि-कलाके पिता हैं। न जाने किस अलक्षित शक्तिके प्रेरणासे मैं कानपुर आया कि आज मेरी शशिकलाके जीवनका गुप्त भेद प्रकट

हो गया! मैंने वृद्धसे तो कुछ नहीं कहा, पर दासीसे सब हाल कह दिया।

दासीने कहा—अब तो बड़ी मुश्किल है। यह हाल इनको किस तरह समझाऊँ। खैर, आप शशिकलाको ले आइए। मैं कोई उपाय सोच लूँगी।

मैंने इलाहाबाद आकर शशिकलासे सब वृत्तान्त कहा। शशिकला भी कानपुर आई। तब दासीने वृद्धसे कहा—आपको एक खुशखबरी सुनाऊँगी।

वृद्धने पूछा—क्या?

दासी—बाईजीने आज अकेलेमें बुलाकर कहा कि जब वे आपसे झगड़कर चली गई थीं तब उनको एक लड़की हुई थी। उसको उन्होंने छिपा रक्खा था, आज बतलाया है।

वृद्धने खुश होकर पूछा—वह लड़की कहाँ है?

दासी—उसका विवाह देवेन्द्रनाथके साथ हुआ है। वह आज अपने पतिके साथ आई है। कहिए तो बुला लाऊँ।

वृद्धने कहा—अभी बुला लाओ।

पिता और पुत्रीका मिलन हुआ। वृद्धको कितनी प्रसन्नता हुई, मैं कह नहीं सकता।

इसके बाद मेरी शशिकलाके मुखपर फिर कभी विषादकी छाया नहीं दिखाई पड़ी और वृद्धने अपना जीवन छायाके ही साथ काट दिया।

लीलाकी खोज

संसारमें जीवन-मरण, सुख-दुःखका चक्र बराबर घूमता रहता है। पर यह चक्र है क्या? लोग कहते हैं कि यही तो संसार है। हमारे लिए यही परम लाभ है कि हम क्षण-भर यहाँ निःश्वास लेते हैं। यहाँ चञ्चलाकी चमककी तरह जीवन क्षण-भर उदित होकर अस्त हो जाता है,—हृदयकी कामनायें हृदयमें ही बनी रहती हैं। जहाँ सदा अपूर्णता है वहाँ रहनेसे लाभ क्या है, विधाताके इस लीला-क्षेत्रमें मनुष्योंको यह क्षणिक जीवन क्यों प्रदान किया गया है,—हम नहीं जानते; तो भी, विधिका यह विधान हम चुपचाप सह लेते हैं। न जाने किस आशामें पड़कर हम अपने हृदयमें इष्ट-जनोंका यह अनन्त विच्छेद-भार लिये रहते हैं। एक बार मैंने विधाताके इस विषम चक्रका अनुभव किया था।

वसन्तपुरमें मेरा एक मुक़दमा था। उसीके लिए मैं वहाँ गया था। मेरी इच्छा थी कि मुक़दमा हो जानेपर मैं उसी दिन घर लौट जाऊँ, इसलिए चार बजते ही अपने मित्रके आग्रहको टालकर मैं इक्केपर स्टेशन आया। यहाँ आनेपर मालूम हुआ कि गाड़ी आनेमें आज दो घण्टेकी देरी है। एक बार तो यह इच्छा हुई कि शहर लौट चलूँ। फिर सोचा, सामान तो कुछ है ही नहीं, दो घण्टे यों ही घूम-घामकर काट दूँगा। यह सोचकर मैं स्टेशनसे बाहर निकलकर घूमने लगा।

स्टेशनके आसपास कितने ही छोटे-बड़े घर थे; पर उनमें एकही-पर मेरा ध्यान आकृष्ट हुआ। वह हलके नीले रङ्गसे रँगा हुआ

था। उसके बाहर पाँच वर्षकी एक लड़की खेल रही थी। बालिकाके मुखपर शैशव-कालकी सरलता स्पष्ट झलक रही रही थी। वह एक कुत्तेके साथ खेल रही थी। उसके हाथमें एक गेंद थी। वह गेंदको इधर उधर फेंकती और कुत्ता दौड़ दौड़कर उठा लाता। यद्यपि इस खेलमें कोई विशेषता नहीं थी, तो भी मैं खड़ा खड़ा देखता रहा। एक बार वह गेंद मेरी ओर फेंकी गई। कुत्तेके साथ वह भी दौड़ती आई, पर अबकी बार गेंद नहीं मिली तब उसने मुझसे पूछा, "आपने देखा है, मेरी गेंद किधर गई?" मैंने तत्काल ही लड़कीकी गेंद ढूँढ़ दी। उसकी आँखोंमें हर्षकी एक ज्योति-रेखा क्षण-भरके लिए उदित हुई, फिर वह गम्भीर कालिमामें लीन हो गई। थोड़ी देरके बाद भीतरसे किसीने पुकारकर कहा, "लीला भीतर चली गई।" तब मैं स्टेशन चला आया।

चार-पाँच वर्षके बाद एक बार मुझे फिर वसन्तपुर जाना पड़ा। स्टेशनके बाहर आते ही मेरी दृष्टि उसी हलके नीले रङ्गसे रँगे हुए मकानपर पड़ी। उसे देखकर मुझे अपनी लीलाका ख्याल आ गया। मैं ठहर गया। जेबसे दियासलाई निकाल एक सिगरेट जलाकर मैं रास्तेपर खड़ा रहा। थोड़ी ही देरमें एक दस-ग्यारह वर्षकी लड़की बाहर निकली, उसे देखकर मेरी आँखें शीतल हो गईं। समझा, यही लीला है। वह लड़की मकानके सीढ़ीपर कोई किताब पढ़ने लगी। उससे कुछ बातें करनेका अहातेका लोभ-संवरण न कर मैं उसके पास जाकर पूछने लगा, "शहर जानेका रास्ता कौन-सा है?" लड़की मेरी ओर चकित होकर देखने लगी, फिर बोली, "यही सड़क है। इसीसे सीधे चले जाओ।" मैंने देखा, वह रायल रीडर नम्बर थ्री पढ़ रही है। लीला अँगरेजी पढ़ रही है, यह जानकर मुझे खुशी हुई।

इसके दो सालके वाद मैं फिर वसन्तपुर गया । तब लीलाके मकानके सामने बड़ी तैयारी हो रही थी । लोगोंकी भीड़-सी लगी थी । पूछनेसे मालूम हुआ कि सतीश बाबूकी कन्याका विवाह हो रहा है । एक बार न जाने क्यों कन्याको देखनेकी मेरी इच्छा हुई । मैं भी दूसरे लोगोंके साथ भीतर घुसकर विवाह-मण्डपमें जा पहुँचा । वहाँ जाकर देखा कि मेरी लीला नव-वधूके वेशमें बैठी हुई है । वर भी उसीके अनुरूप था । जब दहेज देनेका समय आया तब मैंने भी उठकर एक बावूसे कहा, "मैं कुछ देना चाहता हूँ ।" बाबू साहबने एक बार मेरी ओर देखा पर कहा कुछ नहीं । वे मुझे साथ ले गये । मण्डपके भीतर जाकर मैंने पचास रुपये दिये । इसके बाद मैं बाहर निकल आया । बाहर पूछनेसे मालूम हुआ कि वरका नाम सुशील-कुमार है, वकील हैं, राजनगरमें वकालत करते हैं ।

दस वर्षके बाद मुझे राजनगर भी जानेका मौका मिला । मैं लीलाकी बात बिलकुल भूल गया था पर बाजारमें साइनबोर्डपर सुशीलकुमारका नाम देखकर मुझे लीलाका स्मरण आ गया । मैं अपना मुक़दमा सुशील बाबूहीको देनेका निश्चय कर भीतर उनसे मिला । सुशील बाबूने बड़े आदरसे मुझे बैठाया । पहले तो मैं उनसे मुक़दमेके विषयमें ही बातें करता रहा । कुछ देरके बाद मैंने उनसे कहा—यदि आप मेरी धृष्टता क्षमा करें, तो मैं आपसे एक बात पूछूँ ।

वकील—पूछिए ।

मैं—वह आपकी घरकी बात है और उसे पूछनेका कोई भी अधिकार मुझे नहीं है ।

वकील साहब (हँसकर)—खैर, कहिए तो क्या बात है ?

मैं—आपकी धर्म-पत्नीका नाम लीला है ?

वकील साहबका मुख लाल हो गया। फिर बोले—नहीं।

मैंने चकित होकर पूछा, क्या आपका विवाह वसन्तपुरके सतीशबाबूकी कन्याके साथ नहीं हुआ ?"

"हाँ, वहीं हुआ है। आप कैसे जानते हैं ?"

"मैं आपके विवाहमें उपस्थित था।"

"हाँ!"

"तब क्या सतीश बाबूकी कन्याका नाम लीला नहीं है ?"

"नहीं, पर आप पूछते क्यों हैं ?"

इस 'क्यों' का उत्तर क्या दूँ ? मैं खुद नहीं जानता, मैं क्यों पूछ रहा था। मेरी इस उत्कण्ठाका कोई कारण नहीं था। क्षण-भरके बाद मैंने सुशील बाबूसे कहा, "आप मेरी असभ्यताका खयाल न करें।" यह कहकर मैंने उनसे अपनी लीलाके विषयमें सब बातें बतला दीं।

वकील साहबने हँसकर कहा—आप भ्रममें पड़ गये। ख़ैर, मैं भीतर पूछकर आता हूँ।

थोड़ी देरके बाद वकील साहब लौट आये। मैंने उनकी ओर देखा। उन्होंने कहा—हाँ, आपका कहना ठीक है, उस मकानमें पहले हरिनाथ बाबू रहते थे। उनकी कन्याका नाम लीला था। पर जब वह आठ वर्षकी थी तभी उसकी मृत्यु हो गई। आज चौदह वर्ष हो गये।

मेरा हृदय 'धक' करके रह गया।

चौदह वर्ष ? और मैं अभी तक लीलाको इस जीव-लोकमें ढूँढ़ रहा था!

परिवर्त्तन

एक ही पक्षमें मोहन और नन्दिनीका जन्म हुआ। मोहन गोविन्दका लड़का था और नन्दिनी थी दीवान साहबकी लड़की।

दीवान साहबके मकानसे गोविन्दका घर मिला हुआ था। जातिका अहीर होनेपर भी गोविन्दकी प्रतिष्ठा थी। उसकी सुजनता देखकर दीवान साहब भी उसका आदर करते थे। प्रायः धन हो जानेपर नीचकुलोत्पन्न लोगोंमें बड़ा अभिमान हो जाता है। पर गोविन्दने कभी अपने धनका दर्प नहीं किया। वह सबसे कहा करता—आप लोगोंकी ही दया-दृष्टि है जो मैं आज कुछ कमाने-खाने लगा हूँ।

नन्दिनीकी माका नाम था सुमित्रा और मोहनकी माका नाम था गोमती। गोमती प्रायः घी लेकर दीवान साहबके घर आया करती थी पर जब दस महिने तक वह एक दिन भी नहीं आई तब सुमित्राने अपनी एक दासीसे पूछा—आजकल यहाँ गोमती क्यों नहीं आती? दूसरी जगह तो वह बराबर आती-जाती है।

दासीने कहा—एक ही पक्षमें तो नन्दिनी और मोहनका जन्म हुआ है। यदि साल-भरके भीतर आपसे उसकी भेंट हो जाय तो मोहनके अनिष्टका डर है। इसीसे वह यहाँ नहीं आती।

यह सुनकर सुमित्रा चुप तो हो गई, पर उसके हृदयमें एक प्रकारका क्रोध हुआ और उसने गोमतीसे किसी भी तरह भेंट करनेका निश्चय कर लिया। एक दिन समीपके ही घरमें गोमती गई थी। सुमित्रा तुरन्त एक दासी लेकर एक बहानेसे उसी घरमें चली

गई। गोमतीसे भेंट हो गई। गोमतीने तुरन्त ही उसके पैर पड़े पर उसका मुँह किसी अनिष्टकी सम्भावनासे फीका पड़ गया।

मोहन दीवानसाहबके घर बचपनसे ही आने लगा था। उसका अधिकांश समय वहीं व्यतीत होता था। उसकी माँ भी दीवान-साहबके घर काम करती थी। उसीके साथ वह आया करता था। पाँच वर्षसे तेरह वर्ष तक, सच पूछा जाय तो, उसका लालन-पालन दीवान साहबके ही घरमें हुआ। सभी उसको प्यार करते थे। जब तक नन्दिनी पढ़ती रही तबतक वह भी खूब पढ़ता रहा। पर नन्दिनीका विवाह हो जानेके बाद ससुराल चले जानेपर मोहन मानो बिलकुल निराधार हो गया। वह कभी अपने पड़ोसके लड़कोंसे मिला नहीं था। उसे अपनी ही अवस्थावाले लड़कोंसे खेलनेमें भय होता था। यदि कोई उससे कुछ पूछता तो वह घबराकर कुछका कुछ कह देता। उसकी यह दशा देखकर सभी लड़के हँसते थे। पर वह यह निरादर चुपचाप सह लेता था।

गोविन्दको अपने पुत्रके विषयमें बड़ी चिन्ता थी। उसने पहले अँगरेजी सिखानेके लिए एक मास्टर रक्खा। पर दो महीने तक लगातार कोशिश करनेपर भी, शारीरिक दण्ड देनेपर भी, मोहन एक दिन भी पढ़नेके लिए नहीं बैठा। तब गोविन्दने गाँवके पण्डितजीकी शरण ली। शिक्षा देनेमें पण्डितजीकी बड़ी धाक थी। नन्दिनीको शिक्षा उन्होंने ही दी थी। गोविन्द अपने लड़केको 'आदमी' बना देना चाहता था। वह चाहता था कि मोहन भी उसकी तरह पढ़-लिखकर चार लोगोंमें प्रतिष्ठित हो जाय। उसने इसके लिए फिर चेष्टा की। पण्डितजीको तो, जो अहीरके लड़केको पढ़ानेमें अपनी मानहानि समझते थे, किसी प्रकार उसने अपनी ओर कर लिया,

पर मोहनके भाग्यमें विद्या थी ही नहीं। पण्डितजीकी हृदयग्राहिणी शिक्षासे भी वह कुछ लाभ न उठा सका। 'हिन्दी शिक्षावली'को समाप्त करके ज्यों ही 'रघुवंश' और 'कौमुदी'के पृष्ठोंपर उसने दृष्टिपात किया त्यों ही उसका साहस छूट गया। पण्डितजीने अपनी ओरसे खूब प्रयत्न किया, पर हुआ कुछ नहीं। अन्तमें उन्होंने एक दिन गोविन्दसे आकर कह दिया कि वे अब मोहनको न पढ़ा सकेंगे।

गोविन्द निराश होकर मोहनको घरका उद्यम सिखाने लगा। पर इसमें भी उसका मनोरथ सफल न हुआ। प्रातःकाल उठकर मोहन अपनी वंशी लेकर किसी निर्जन स्थानको चला जाता और वृक्षके ऊपर चढ़कर स्वर और लयका विचार किये बिना ही अपनी वंशीकी विचित्र ध्वनिसे प्रकृतिको मुग्ध करनेकी चेष्टा करता। हम नहीं कह सकते कि प्रकृति उस धृष्ट गायकके अनर्गल संगीतसे सन्तुष्ट होती थी कि नहीं, परन्तु, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वह प्रतिदिन मोहनको अपनी प्रतिध्वनिके द्वारा शिक्षा देती थी। अपने गुरु और पिताके प्रयासोंको विफल करके मोहन प्रकृतिसे शिक्षा लेने लगा।

कुछ दिनोंके बाद गोविन्दकी मृत्यु हो गई। मोहनको कुछ ज्ञान तो था ही नहीं, विधवा मातापर ही घरका भार पड़ा। कुछ लोगोंसे सहायता लेकर वह सब काम करने लगी। उसने भी कई बार मोहनको काम सीखनेके लिए कहा, पर मोहनने सदा यही उत्तर दिया, "माँ, मैं तो निर्बुद्धि हूँ, मैं क्या सीखूँगा!" फिर वैसा ही समय व्यतीत होने लगा। मोहनकी दिन-चर्य्यामें कुछ भी फेरफार न हुआ। प्रातःकालसे सायंकाल तक प्रकृतिकी संगीत-शिक्षा होने लगी।

एक दिन मोहनकी मौसी अपनी बहनको देखनेके लिए आई।

बहनने उससे अपने पुत्रकी कथा कही। मौसीने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, "क्या करोगी बहिन, जो भाग्यमें लिख गया है वह अवश्य होगा।" थोड़ी देरमें मोहन आया। तब उसे बुलाकर उसकी मौसी कहने लगी, "बेटा, मेरे एक गाय है, उसे देखनेवाला कोई नहीं। तुम घरका काम तो करते हो नहीं, चलो, उसीको लाकर सेवा किया करो।"

मोहनने स्वीकार कर लिया। दूसरे ही दिन मौसीके घर जाकर वह गाय ले आया। मोहनने अपनी गायका नाम रक्खा नन्दिनी। उसने अपने पण्डितजीसे सुन लिया था कि वशिष्ठकी धेनुका नाम नन्दिनी था। दिलीपके सदृश वह भी नन्दिनीके साथ रहने लगा। जहाँ वह जाती थी, जाता था। उसकी गतिमें कभी बाधा नहीं डालता था। नन्दिनीसे उसका प्रेम इतना बढ़ गया कि वह क्षण-भर भी उसके बिना नहीं रह सकता था। अब वह जड़ प्रकृतिको अपनी वंशीकी ध्वनि नहीं सुनाता था,—उसकी वंशीपर अब केवल नंदिनीका अधिकार था। नहीं मालूम, उसकी इस निष्काम सेवाकी ओर नंदिनीकी कैसी दृष्टि थी। एक बार जब वह सो रहा था, नंदिनी (कदाचित् उसके प्रेमकी परीक्षा करनेके लिए) न जाने कहाँ चली गई। मोहनको बड़ी चिन्ता हुई। वह दिनभर ढूँढ़ता रहा। पर नंदिनीका पता न लगा। सन्ध्या समय वह उदास होकर घर लौटा। माताने पूछा; "नंदिनी कहाँ है?" माताके कोपसे बचनेके लिए उसने कह दिया, "उसे मौसीके घर छोड़ आया हूँ।" माता चुप हो रही, पर मोहनसे रातको भी न रहा गया। मातासे कुछ बहाना करके वह घरसे निकल पड़ा। रात-भर खोजता रहा, अंतमें उसका परिश्रम सफल हुआ। रायबाबूके उद्यानमें एक

कदम्ब वृक्षके नीचे नंदिनी निःशङ्क बैठी मिली। मोहन तुरन्त ही उससे लिपट गया और रोकर कहने लगा "नंदिनी, बनकर रहो मेरे हृदयकी बन्दिनी।" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यही उसकी पद्य-रचना थी जिसका उसे बड़ा अभिमान था।

अब नंदिनी प्रतिदिन रायबाबूके उद्यानमें जाने लगी। वह सदा उसी कदम्बके नीचे जाकर बैठती, मोहन भी उसके साथ जाता और कदम्बकी एक शाखापर बैठा रहता था। वह कदम्ब रायबाबूकी अट्टालिकासे लगा हुआ था। जहाँ मोहन बैठता था उसके सामने एक खिड़की थी जो सदा बन्द रहती थी।

एक दिन मध्याह्न-कालमें, जब सूर्यकी प्रखर ज्वालासे संतप्त होकर प्रकृति निश्चेष्ट-सी हो रही थी, मोहन निश्चिन्त होकर कदम्बकी शाखापर बैठा हुआ गा रहा था—

"नंदिनी बनकर रहो हृदयकी बन्दिनी।"

इतनेमें उसने देखा कि नंदिनी उठकर कहीं जा रही है। तब उसे न जाने क्या हुआ, वह ज़ोरसे पुकारने लगा—नंदिनी, नंदिनी!

सहसा सामनेवाली खिड़की खुली और एक रमणीने अपना मुँह बाहर निकालकर उससे पूछा, "क्यों, मुझे क्यों पुकारते हो?" मोहनने विस्मित होकर कहा, "तुम्हें?" रमणीने रुष्ट होकर उत्तर दिया, "हाँ मुझे, मैं ही नन्दिनी हूँ।" मोहन कुछ देर तक भयसे स्तम्भित हो गया। फिर उसने विनयपूर्वक कहा, "मुझे क्षमा करो। मैं नहीं जानता था, मैं अपनी गायको पुकार रहा था। उसका भी नाम नन्दिनी है।" रमणीने भृकुटी संकुचित करके कहा, "ऐसा?" फिर तुरन्त ही खिड़की बन्द हो गई। थोड़ी

देर तक मोहन कुछ समझ न सका। फिर वह धीरेसे उतर आया और नन्दिनीको लेकर घर लौट पड़ा।

घरमें आकर उसने देखा कि रायबाबूका दरबान रघुनाथ उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसे देखते ही रघुनाथ कहने लगा, "रायबाबूने तुम्हारी गाय मोल ले ली है। चलकर इसे गोशालामें बाँध आओ।"

मोहनका हृदय एक बार ज़ोरसे धक करके रह गया, फटा नहीं।

वह चुपचाप रघुनाथके साथ अपनी नन्दिनीको रायबाबूकी गोशालामें छोड़ आया। उसी दिनसे मोहनकी दिन-चर्य्यामें परिवर्तन हो गया। वह निर्जन वनमें न जाकर घरका काम-काज देखने लगा। माताको बड़ी प्रसन्नता हुई। पर उसे यह नहीं मालूम हुआ कि उसकी प्रसन्नताके लिए मोहनको क्या देना पड़ा।

सद्भावका प्रभाव

रात के सात बजे राजनाँदगाँवके स्टेशनपर रघुनाथ उतर पड़ा। उस समय यदि कोई भी उसे देखता तो उसे यह विश्वास कभी नहीं होता कि यह वही रघुनाथ है जिसका नाम सुनकर पुलिसके अच्छे अच्छे जवान काँप उठते हैं।

रघुनाथने बीसों वार मध्यप्रदेशमें डाके डाले पर वह कभी नहीं पकड़ा गया। उसने दो वार तो पुलिस स्टेशनपर हमला कर पुलिसवालोंके छक्के छुड़ा दिये। उसके कारण कितने ही खाँ साहबोंकी नाक कट गई। उसे पकड़नेके लिए बड़ी बड़ी तदवीरें की गईं। इश्तिहार निकाला गया कि जो कोई उसे पकड़ा देगा उसे पाच हज़ार रुपये मिलेंगे। पर पकड़ा देनेकी वात तो दूर रही, किसीको उसका कुछ पता तक न लगा।

जिस रघुनाथके लिए पुलिस इतनी हैरान है वह जब राजनाँदगाँवके स्टेशनपर उतरा तब इतना क्षुद्र प्रतीत हुआ कि किसीने उसपर दृष्टिपात तक नहीं किया। उम्र पैंतीस-छत्तीस सालसे अधिक न रही होगी। एक मैला काला कोट शरीरपर था। धोती भी खूब मैली थी। जूता फटा हुआ था। सिरपर साफा बँधा हुआ था। हाथमें एक छोटी-सी गठरी थी। स्टेशनसे वाहर आकर वह मुसाफिरखानेमें ठहर गया। वैठे वैठे वह न जाने क्या सोचता रहा। कुछ देरके बाद चिन्ता टूटी और उसने ऊपर सिर उठाया। सामने एक दीवाल पर एक बड़ा इश्तिहार चिपका था—

इनाम

पाँच हजार रुपया

उस शख्सको जो रघुनाथ डाकूको पकड़ा देगा

दस्तखत—रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे

दीवान, राजनाँदगाँव

इश्तहार पढ़कर रघुनाथ मुस्कुराने लगा। पर क्षण-भरमें ही उसकी मुस्कराहट दूर हो गई और चेहरा मलीन हो गया। पास ही एक आदमी पान बेच रहा था। उससे पूछा—क्यों भाई, सर्वटे साहब कौन हैं? रायपुरके तो नहीं?

पानवाला—हाँ साहब, वही तो हैं। रघुनाथ सर्वटेके तीन लड़के हैं, सबसे छोटे हमारे सर्वटे साहब हैं। दो लड़कियाँ हैं। एकका विवाह पूनामें हुआ है। दूसरीका विवाह अभीतक नहीं हुआ है।

रघुनाथ—देखता हूँ, आप उन्हें अच्छी तरह जानते हैं।

पानवाला—हाँ साहब, अच्छी तरह। मैं तो उनके यहाँ चार साल तक नौकर था।

रघुनाथने फिर कुछ न पूछा, सबसे अलग एक अन्धेरे कोनेमें बैठकर वह अपने अतीत जीवनकी बातें सोचने लगा।

जब रघुनाथ स्कूलमें पढ़ता था तब उसका एक ही साथी था। उसका नाम था रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे। दोनों एक साथ रहते, एक साथ पढ़ते, एक साथ घूमने जाते। एक दिन किसी खेलमें एक लड़का रामचन्द्रको मारने दौड़ा। रघुनाथ उस लड़केसे भिड़ गया। उसके बाद उन दोनोंकी मित्रता और भी दृढ़ हो गई। एक दिन रघुनाथने

रामचन्द्रसे कहा था, "भाई, अभी तुम छोटे हो, कभी तुम बड़े आदमी हो जाओगे, कहींके दीवान होगे, उस समय क्या तुम मुझपर दया करोगे?" परन्तु आज,—आज वही रामचन्द्र उसे भूल ही नहीं गया, उसके प्राणोंतकका ग्राहक बन गया है। वह इसके लिए पाँच हजार रुपये तक देनेको तैयार है। यही मनुष्यत्व है! विपत्तिमें कोई किसीका साथ नहीं देता। यदि आज रघुनाथ भी बड़ा आदमी होता तो यही रामचन्द्र उससे अपना बन्धुत्व बतलाता।

यह सोचते सोचते रघुनाथका शरीर क्रोधसे काँपने लगा। जिस प्रतिहिंसाके भावने उसे डाकू बना रक्खा था वही भाव उसके हृदयमें फिर प्रबल रूपसे जाग्रत हो उठा। वह मन ही मन कहने लगा—आज पन्द्रह वर्षोंसे मनुष्यमात्रका शत्रु बनकर घूम रहा हूँ। यह सच है कि मैं नीच हूँ। पर मुझे नीच किसने बनाया? यदि कोई भी मुझे सहायता देता तो आज मैं भी कुछका कुछ हो गया होता। सब मुझसे घृणा करने लगे,—सभी मेरा तिरस्कार करने लगे। जो मेरे मित्र थे उन्होंने मुझसे मुँह मोड़ लिया। ख़ैर, आज मैं बदला लूँगा। रामचन्द्रको भी बतलाऊँगा कि यदि तुम मेरे प्राणोंके ग्राहक हो तो मैं भी तुम्हें इसका उचित फल दूँगा।

टन टन कर आठ बज गये। रघुनाथ उठ खड़ा हुआ। उसने सोचा, अभी आठ ही बजे हैं। जाकर सर्वेट साहबसे मिलूँ। अब यह जीवन असह्य हो गया है। कब तक मारा मारा फिरूँगा। जो कुछ मुझे करना है आज कर डालूँगा। अधिक जीनेकी लालसा नहीं है। यह सोचकर रघुनाथ तुरन्त ही वहाँसे रवाना हुआ। स्टेशनसे थोड़ी दूरपर सर्वेट साहबका बंगला था। पहुँचनेपर रघुनाथ सोचने लगा, मैं क्या कहकर उसके पास खबर पहुँचाऊँगा। 'रघुनाथ'

तो मेरा कल्पित नाम है। मैं अपने असली नाम रघुवीरशरणसे ही खबर पहुँचाऊँगा। देखूँ क्या कहता है।

फाटकपर एक सिपाही खड़ा था। उसने रघुनाथसे पूछा—क्या चाहिए?

रघुनाथ क्षण-भर तक रुक कर बोला—जाकर सर्वटे साहबको खबर दो कि उनका बाल-सखा रघुवीरशरण उनसे मिलनेके लिए आया है।

सिपाहीने रघुनाथको सिरसे पैर तक देखा, पर उसने कहा कुछ नहीं। तुरन्त भीतर जाकर खबर दी। रघुनाथका हृदय धड़क रहा था। थोड़ी ही देरमें सिपाहीके साथ सर्वटे साहब बाहर आये, बोले—कौन, भैया रघुवीरशरण? आओ आओ, आज कितने दिनोंके बाद तुमसे भेंट हुई।

यह कहकर सर्वटे साहबने रघुनाथको गले लगा लिया और फिर वे उसका हाथ पकड़कर भीतर ले चले। रघुनाथ मन्त्र-मुग्धकी तरह उनके साथ साथ चला। सोचा, शायद यह यहाँ अन्धेरेमें मुझे पहचान न सका। पर कमरेके भीतर ले जाकर सर्वटे साहबने बड़े आदरसे रघुनाथको कुर्सीपर बैठाकर कहा—एक मिनटमें आता हूँ।

इतना कहकर सर्वटे साहब भीतर गये। रघुनाथ चकित होकर सोचने लगा, यह क्या बात है, शायद यह भी इसकी चालाकी है। खैर, देखूँ, क्या चालाकी करता है। इतनेमें नौकर आकर रघुनाथको भीतर ले गया। गर्म पानी तैयार था। जब रघुनाथ नहा-धोकर बाहर निकला तब नौकरने उसे साफ कपड़े पहननेके लिए दिये। कपड़े पहनकर रघुनाथ फिर उसी कमरेमें आया। सर्वटे साहब उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इसके बाद दोनों भीतर गये। रसोई तैयार थी। दोनों एक ही साथ खाने बैठे। खूब हँसी-दिल्लगी होती रही।

रघुनाथ क्षण-भरके लिए बिलकुल भूल गया कि वह रघुनाथ है। जब खा-पीकर रघुनाथ फिर उसी कमरेमें आया तब उसने कहा—शायद आप मुझे पहचान न सके।

सर्वेंटे साहब—मैं खूब पहचानता हूँ। तुम मेरे मित्र रघुवीर-शरण हो। इससे अधिक जाननेकी जरूरत भी नहीं है।

रघुनाथ—आप शायद रघुनाथको जानते होंगे।

सर्वेंटे साहब—उसका नाम मत लो, उसकी बात मत करो। तुम जानते हो, मैं रघुनाथका सबसे बड़ा शत्रु हूँ।

रघुनाथ चुप हो गया। कुछ देरके बाद उसने कहा, "मैं अब जाऊँगा।" सर्वेंटे साहबने "अच्छी बात है" कहकर नौकरको गाड़ी तैयार करनेके लिए कहा। फिर एक आलमारी खोलकर उसमेंसे दो हजार रुपयेके नोट निकाले और उन्हें एक थैलीमें बंद कर रघुनाथके हाथमें दिये, फिर कहा—इसका सदुपयोग करना।

रघुनाथकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने गद्गद कण्ठसे कहा—मेरी एक बात सुनो।

सर्वेंटे साहब बोले—तुम्हारी एक भी बात नहीं सुनूँगा। जान रक्खो कि यदि मुझे रघुनाथ मिल जायगा तो मैं उसे कठोर दण्ड दूँगा।

रघुनाथने सर्वेंटे साहबका हाथ पकड़कर कहा—मित्र, तुम उसकी चिन्ता मत करो। आज रघुनाथ मर गया। अब उसे कोई नहीं देखेगा।

इतनेमें नौकरने कहा, "गाड़ी तैयार है।" रघुनाथ उसपर बैठकर रवाना हो गया।

सुखद अन्त

कामिनी घरका द्वार खोलकर बाहर देखने लगी।—सन्ध्या हो गई थी। आकाश मेघाच्छन्न था। सूर्यकी म्रियमाण लालिमा मेघोंका आवरण दूर करनेकी व्यर्थ चेष्टा कर रही थी। पक्षियोंका एक दल न जानें किस आशासे मुग्ध होकर अनन्त आकाशमें उड़ा जा रहा था। नीचे पृथ्वीपर दो-चार गाय-बैल चुपचाप खड़े हुए इधर-उधर ताक रहे थे। एक स्त्री सिरपर लकड़ीका गट्ठा लिये चली आ रही थी।

कामिनीने फिर दूसरी ओर दृष्टि फेरी। पथ बिलकुल शून्य था। तो भी कामिनी सतृष्ण नेत्रोंसे उधर देखती रही। शायद उसका पति,—छिः, कामिनीका कोई पति नहीं है। वह सधवा होकर भी विधवा है। जिसने उसे धोखा देकर, उसका सर्वस्व नष्ट कर उसे भिखारिणी बनाकर, उसकी यह दुरवस्था कर दी, वह क्या उसका पति है?—नहीं, कामिनीने प्रतिज्ञा कर ली है कि अब वह अपने पतिका मुख नहीं देखेगी, वह सधवा होकर भी विधवा बनी रहेगी।—परन्तु, कभी वह भी एक दिन था जब कामिनी इसी तरह उत्कण्ठित होकर दरवाज़ेपर खड़ी खड़ी अपने पतिके आनेकी राह देखती और जब वह आता तब वह कितने आनन्दसे उसका स्वागत करती।—उसका पति उस समय उसे कितना प्यार करता था!—यह सब उसकी मौसीका काम था; नहीं तो उसका पति कामिनीको छोड़कर, उसे अनाथिनी बनाकर, दूसरा विवाह न करता। यदि कभी मौका मिलेगा, तो कामिनी बतला देगी कि वह कैसी स्त्री है।

दरवाजेपर खड़ी खड़ी कामिनी यही बात सोच रही थी कि उसकी दृष्टि एक आदमीपर पड़ी जो बड़ी तेजीसे दौड़ता हुआ उसीकी ओर चला आ रहा था। यद्यपि वह आदमी अभी दूर था तो भी कामिनी उसे पहचान गई। क्षण-भरके लिए उसका मुख लाल हो गया। फिर तुरन्त ही वह पीला पड़ गया। कामिनीका हृदय ज़ोरसे धड़कने लगा। उसने दरवाजेसे हट जानेकी चेष्टा की, पर उसके पैर हटे नहीं। पत्थरकी मूर्तिकी तरह चुपचाप खड़ी रही।

वह आदमी बिलकुल पास आ गया। कामिनीने देखा, उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं। चेहरेपर आतंक छाया हुआ है। पहले तो उसने कामिनीको देखा नहीं, पर ज्यों ही कामिनीपर उसकी दृष्टि पड़ी त्यों ही घबड़ाकर वह खड़ा हो गया और बोला—कौन, कामिनी? हाँ, यह,—यह तुम्हारा ही घर है। म भूल गया था।

इतना कहकर वह आगे बढ़ा, दो कदम चलकर वह रुक गया। फिर आगे बढ़ा फिर रुका। अन्तमें वह लौटकर फिर कामिनीके पास आया और कहने लगा—कामिनी, यदि तुमसे कोई पूछे कि मैं किधर गया तो तुम मत बतलाना।

कामिनी कुछ डर गई, पूछने लगी—क्यों?

वह कुछ कहते कहते रुक गया, फिर बोला,—देखो, मैं तुम्हारा पति हूँ। तुम क्या मेरा जीवन-रक्षा न करोगी?

कामिनीने घबड़ाकर कहा—क्या बात है, कुछ कहते क्यों नहीं?

वह कुछ सोचता रहा। कुछ देर बाद पूछा—तुम्हारे पिता घरमें हैं?

कामिनी—नहीं, वे शृंगारपुर गये हैं।

वह—कामिनी, मेरे कारण तुम्हें सदा दुःख ही भोगना पड़ा। जब तक मेरे साथ रहीं तबतक तुम्हें कभी सुख न मिला। परन्तु, आज मैं तुमसे एक भीख माँगता हूँ, दोगी ?

कामिनी—क्या ?

वह—मैं बड़ी विपत्तिमें फँसा हूँ। पुलिस मेरे पीछे लगी हुई है। मुझे एक रात अपने यहाँ छिपा कर रख लो। कल मैं कहीं भाग जाऊँगा।

कामिनी कुछ सोचने लगी।

कामिनीको चुपचाप देखकर वह फिर गिड़गिड़ाकर कहने लगा—कामिनी, मुझे बचा लो। रात-भर मुझे रख लो। तुम्हारे घरमें कोई मुझे ढूँढ़ने नहीं आवेगा; क्योंकि सब जानते हैं कि तुम्हारे पिता मुझसे कितने सख्त नाराज़ हैं।

कामिनीने कहा—अच्छा भीतर चलो।

वह कामिनीके पीछे पीछे घरके भीतर घुसा।

कामिनीने उसे ले जाकर अपने कमरेमें बैठाया। कुछ ठण्डसे कुछ डरसे वह काँप रहा था। कामिनीने फुर्तीसे आग जलाकर उसके सामने धर दी। वह बैठकर तापने लगा।

कामिनी रसोई बनाने लगी। रसोई तैयार हो जानेपर उसे बुलाकर ले गई। खाते खाते वह कहने लगा—तुम खूब अच्छी रसोई बनाती हो। मुँह देखी बात नहीं कहता।

कामिनी हँसने लगी। थोड़ी देरमें दोनों बड़े प्रेमसे बातें करने लगे। वर्तमान स्थितिको वे बिलकुल ही भूल गये। खा-पी लेनेपर कामिनीने उसके सोनेके लिए बिस्तर तैयार कर दिये। थका हुआ तो था ही, बिस्तरपर लेटते ही उसे नींद आ गई।

पर कामिनी आगके पास बैठी ही रही । एक खूँटीपर उसका कोट टँगा था। कामिनीने देखा, उसके बटन टूट गये हैं, दो एक जगह फट भी गया है। सुई-सूत निकालकर उसे दुरुस्त करने लगी।

एक बज गया। कामिनीकी छातीमें दर्द होने लगा। उसे रह-रह कर यह बीमारी हो जाती थी। दो दो चार दिन तक छातीमें बेहद दर्द होता। इसीलिए वैद्यने काम करनेको बिलकुल मना किया था। यह भी कह दिया था कि परिश्रम करनेसे मृत्यु तककी सम्भावना है। कामिनीने कोटको दुरुस्त कर टाँग दिया और फिर जमीन ही पर लेट गई। चार बजे उसकी नींद टूट गई। उसने तुरन्त ही अपने पतिको उठाया। वह उठ बैठा। हाथ-मुँह धोकर वह नित्य-कर्मोंसे निवृत्त हुआ। कामिनीने रातमें ही उसके लिए कुछ खानेकी चीजें तैयार कर दी थीं। जल्दीसे खा-पीकर वह भागनेके लिए तैयार हुआ। दोनों पिछवाड़ेके दरवाजेसे बाहर निकले। अभी अँधेरा था ही। कामिनी उसे गाँवके बाहर ले गई। पर अब एक नाला मिला। नालेमें पूर आया था। वह पूरसे बहुत डरता था। उसे पानीमें धँसनेकी हिम्मत न हुई। उसने कामिनीसे कहा—कामिनी, अब क्या करूँ, सवेरा हुआ ही चाहता है। अगर इस समय नहीं भाग सका, तो फिर बचनेका नहीं, मैं तैरना भी नहीं जानता कि नालेको पार कर जाऊँ।

कामिनी सोचने लगी। क्षण-भरके बाद बोली—मैं तुम्हें पार ले जाऊँगी।

वह चकित होकर बोला—तुम मुझे ले जा सकोगी?

कामिनीने हँसकर कहा—आजमा लो।

कामिनीने अपने कपड़े ठीक किये, अपनी कमरमें एक रस्सी बाँधी, फिर उसका एक छोर उसके हाथमें दिया; और तब वह नदीमें कूद पड़ी। कूदते ही उसकी छातीमें दर्द हुआ। पर वह दर्दकी परवा न कर आगे बढ़ती ही गई। किसी तरह किनारे तक वह पतिको खींच ले गई। किनारेके एक वृक्षके सहारे वह टिककर बैठ गई और अपने पतिसे कहने लगी—अब तुम जल्दी भागो, सबेरा हुआ ही चाहता है।

वह बोला—कामिनी, तुमने आज मेरी प्राण रक्षा की, मैं यह कभी न भूलूँगा। हो सकेगा तो....

पर कामिनीने उसे हाथसे, जानेके लिए इशारा किया। वह चला गया। उसके जाते ही कामिनी लेट गई। आँखोंके आगे अँधेरा छाने लगा।

दूसरे दिन कामिनीके बापने आकर देखा कि कामिनीका शरीर पड़ा हुआ है; परन्तु, उसके अधरोंपर हास्यकी रेखा बनी हुई है। कामिनीके बापने कहा—जान पड़ता है, कामिनीका अन्तकाल बड़ा सुखद था।

एक घंटा

मनुष्योंका ज्ञान-क्षेत्र कितना संकुचित है ! संसारकी बातें तो जानना दूर रहा, हम अपने ही जीवन की ही बातें नहीं जानते; यदि हम अपने जीवनकी ही सब बातें जान लें तो हम आश्चर्यसे मुग्ध हो जायँ। कितनी घटनायें अलक्षित रूपसे आती हैं और चली जाती हैं। उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। प्रातःकालीन समीरकी तरह वे हमको अज्ञानावस्थामें थपकी देकर चली जाती हैं। यह अज्ञान हमारे लिए अच्छा ही है। यदि हममें परोक्ष बातें जान लेनेकी दिव्य शक्ति हो जाय तो हम क्षण-भरके लिए भी निश्चिन्त न बैठ सकें। सम्पत्ति और विपत्तिका उत्थान-पतन देखते ही देखते हम घबड़ा जायँ। रघुनाथके जीवनके एक ही घंटेमें कितनी बातें हो गईं, उन्हें वह खुद नहीं जानता। यदि वह जान सकता, तो न जाने उसकी क्या दशा होती।

रघुनाथ, ब्राह्मणका पुत्र, अल्प-शिक्षित अतएव दरिद्रतासे ग्रस्त था। बीस वर्षकी अवस्थामें वह बिलकुल निराधार हो गया। शरीर हृष्ट-पुष्ट, गौर-वर्ण मुख-मण्डलपर ग्राम्य-जीवन-सुलभ सरलता खेलती थी। गाँवमें जीवन-निर्वाहका उपाय न देखकर उसने राज-नाँदगाँव जाना निश्चय कर लिया। राजनाँदगाँव व्यापारका केन्द्र हो गया है। वहाँ परिश्रमी लोगोंके लिए जीविकाका अभाव नहीं। उसका मामा भी वहीं रहता है। यह सोचकर एक दिन उ घरकी सब चीजें बेचकर एक सौ रुपये एकत्र किये। दो-चार क

गौर कुछ ऐसी ही आवश्यक चीजोंकी एक गठरी बनाकर वह घरसे ाहर निकल पड़ा।

कुँआरका महिना था। आकाश शुभ्र था। पृथ्वीपर भी शुभ्रता फ़ली हुई थी। खेतोंमें किसान अपने अपने कामोंमें लगे थे। धीमी ीमी हवा बह रही थी। खेतोंमें काम करती हुई कुछ स्त्रियाँ गा रही थीं,—'अगम पहाड़ बन बीहड़ बटोहिया, मोहि छाँड़ चले कहाँ आज रे बटोहिया।' जन्मभूमिको छोड़ते हुए रघुनाथके लिए यह वियोग-गान बहुत ही व्यथा-जनक था। उसने पीछे लौटकर एक बार अपने गाँवकी ओर दृष्टि-पात किया। पर गाँव हरे-भरे झाड़ोंसे विलकुल छिप गया था। अनन्त आकाशमें जाकर विलीन होनेवाली एक धूम्र-रेखा ही दिखलाई पड़ती थी। एक दीर्घ निःश्वास लेकर रघुनाथ आगे बढ़ा।

दो-तीन घंटे तक चलनेके बाद रघुनाथ कुछ थक गया। धूप भी कड़ी हो गई। रघुनाथ किसी तरह आगे बढ़ रहा था। पैदल चलनेका उसे अभ्यास नहीं था। कुछ देरके बाद सूर्यकी किरणें असह्य हो गईं। रघुनाथ बिलकुल थक गया। सड़कके किनारे दो-चार आमके पेड़ लगे हुए थे। उन्हींकी छायामें वह चला गया। नाला बह रहा था, पानी पीकर वहीं लेट गया। सोचा, इधरसे कोई मालगाड़ी निकलेगी, तो उसीपर बैठकर चला जाऊँगा। थका तो था ही, लेटते ी उसे नींद आ गई।

जब रघुनाथ निद्रित था, संसार जाग्रत् था। बाह्य जगतपर सकी दृष्टि नहीं, पर उसपर जगतकी दृष्टि थी। कितने लोग उस धरसे आये और गये; कोई घोड़ेपर, कोई गाड़ीपर और कोई पैदल

ही। एक वार एक मोटर-गाड़ी भी धड़ धड़ करती निकल गई। किसीने उसपर दृष्टि-पात भी नहीं किया। किसीने उसे देखकर भी नहीं देखा। कोई उसे शरावी समझकर अपने साथीसे शरावियोंकी दुर्गतिका हाल वतलाता चला गया। कोई उसे दुर्भिक्ष-पीड़ित दरिद्र समझकर वर्तमानकालकी दशापर टीका-टिप्पणी करने लगा। यों ही न जाने कितने लोग आये और गये, पर रघुनाथ उनकी निन्दा और सहानुभूतिको समदृष्टिसे सहता हुआ निश्चिन्त सोता रहा।

थोड़ी देरके वाद एक टाँगा आकर खड़ा हुआ। उसके चक्केकी एक कील टूटकर गिर पड़ी थी। उसमेंसे दो स्त्री-पुरुष उतरे। दोनोंकी वृद्धावस्था थी। पुरुषकी अवस्था लगभग साठ वर्षकी थी और स्त्रीकी कोई पचास वर्षकी। जव तक कोचवान गाड़ीका चक्का सुधारने लगा तव तक दोनों वहीं टहलने लगे। इतनेमें रघुनाथपर उनकी दृष्टि पड़ी। स्त्रीने कहा—देखो तो यह कैसा सुन्दर लड़का सो रहा है!

वृद्धने कहा—कैसी अच्छी नींद सो रहा है। मेरे भाग्यमें ऐसी नींद कहाँ?

स्त्री—उठाऊँ।

पुरुष—मत उठाओ। वेचारा थका-माँदा सो रहा है।

स्त्री—कोई गरीव लड़का है। कितना सुन्दर है! ब्राह्मणका लड़का है। इसे देखकर मुझे अपने मोहनकी सुधि आ जाती है। यह कहकर स्त्रीने एक दीर्घ निःश्वास लिया।

वृद्धने कहा—जाने दो, न जाने किसका लड़का है।

स्त्री—जान पड़ता है, वेचारेका कोई नहीं। नहीं तो वह

सड़कपर क्यों सोता ? सुनो, मुझे यह लड़का बड़ा अच्छा लगता है। तुम एक लड़का गोद लेना चाहते हो, इसे ही क्यों नहीं ले लेते ? कहो तो इसे उठाऊँ ?

भाग्य-लक्ष्मी रघुनाथपर हँस रही थी पर वह चुप पड़ा हुआ था। यदि वह जाग जाता तो कदाचित् वृद्ध उसे अपने साथ लिवा जाता, क्योंकि वह भी उसकी ओर स्नेहार्द्र दृष्टिसे देख रहा था।

वृद्ध ब्राह्मण था। राजनाँदगाँवके व्यवसायियोंमें सबसे धनी था। पर रघुनाथ निश्चिन्त सोता था। उसी समय कोचवानने आकर कहा—गाड़ी ठीक हो गई है।

दोनों गाड़ीपर बैठकर रवाना हो गये।

इसके बाद दो आदमी आकर वहीं बैठ गये और बातचीत करने लगे।

एकने कहा—बड़ी मुश्किलसे जान बची। कानिस्टबिलने देख लिया था। वह बड़ा चालाक था।

दूसरेने कहा—तुम तो बड़ा भद्दा काम करते हो। जरा सावधान रहते तो अभी एक हज़ार हाथ आते।

एक—(रघुनाथकी ओर देखकर) अरे यह कौन सो रहा है ?

दूसरा—कोई मुसाफ़िर होगा।

एक—यार, इसकी कमरमें तो कुछ है।

दूसरा—सच कहते हो, पचास रुपयेसे कम न होंगे। अच्छा ..ल मिला। देखो, कोई आता तो नहीं है ?

पहला—(इधर-उधर देखकर) नहीं कोई नहीं आ रहा है।

दूसरा—देखो, मैं छुरा निकालकर इसकी गर्दनके पास करता

हूँ। तुम चुपचाप इसकी कमरसे रुपये निकाल लो। अगर यह जाग गया तो मैं इसे खत्म ही कर दूँगा।

पहला—अच्छा।

रघुनाथके लिए यह समय बहुत ही भीषण था। उसके प्राण सङ्कटमें थे। पर वह निश्चिन्त सो रहा था।

पहले आदमीने छुरा निकाला ही था कि किसीके पैरोंकी आवाज आई। दोनों चुप-चाप भाग गये और वहाँ एक लड़की आई। लड़की चौदह-पन्द्रह सालकी रही होगी। रघुनाथको देखकर वह लज्जासे खड़ी हो गई। इधर उधर देखने लगी। कोई नहीं था। लड़कीने मन ही मन भगवानसे प्रार्थना की कि इसीके साथ मेरा विवाह हो। पर कुछ कह न सकी क्योंकि तभी खड़ खड़ करती हुई एक गाड़ी आई। लड़की चुपचाप हट गई। गाड़ीवानने रघुनाथको सोते देखकर पुकारा—अरे, कौन सोता है?

रघुनाथकी नींद पूरी हो गई थी, गाड़ीवानकी आवाज़से वह जाग पड़ा। आँखें खोलते ही गाड़ीवानको देखा। उसने पूछा—क्यों भाई, कहाँ जाते हो?

गाड़ीवानने कहा—राजनाँदगाँव।

रघुनाथने कहा—भाई, चार आने देंगे। हमें भी ले चलोगे?

गाड़ीवानने कहा—चलो।

रघुनाथ निश्चिन्त होकर गाड़ीमें बैठ गया।

प्रतीकार

मैं वकील हूँ। आज बीस वर्षसे वकालत कर रहा हूँ। कभी मेरी स्थिति बड़ी खराब थी; पर अब भगवानकी दयादृष्टिसे मुझे किसी बातकी चिन्ता नहीं। घरका काम खूब मजेमें चला जा रहा है। मैं कोई बड़ा वकील तो नहीं हूँ, तो भी कुछ लोग ऐसे हैं जो यहाँ आते ही सबसे पहले मेरे ही घरका पता पूछते हैं। वकील होनेसे मुझे सभी तरहके लोगोंकी बातें सुननी पड़ती हैं। मैं सभीसे अपनी सहानुभूति प्रकट करता हूँ; पर किसीकी कथासे मेरा हृदय द्रवीभूत हो गया हो, इसका मुझे स्मरण नहीं है। पहले पहल मुकद्दमेमें विजय-प्राप्ति होनेपर मुझे प्रसन्नता होती थी और हार होनेसे विषाद भी होता था; पर अब मैं इस द्वन्द्व-भावसे मुक्त हो गया हूँ। मुझे अब हर्ष-विषाद विचलित नहीं करते।

सन्ध्या हो गई थी। मैं अपने कमरेहीमें बैठा हुआ था। लैम्प अभी तक नहीं जलाया गया था। अभी कुछ ऐसी जरूरत भी नहीं थी। सन्ध्या-कालकी म्रियमाण लालिमासे अभी तक कुछ प्रकाश कमरेमें था। मैं अपने अतीत जीवनकी बातें सोच रहा था। मनुष्य-मात्रका यह स्वभाव है कि वह जीवनके प्रभात-कालमें भविष्य-सुखका स्वप्न देखा करता है पर जब मध्याह्न-काल आता है तब भविष्य अन्धकार-पूर्ण ज्ञात होने लगता है; इसीलिए, वह अतीतका ख्याल किया करता है। माताका स्नेह, पिताका ऐश्वर्य, बाल्य-कालका

कौतुक और विद्यार्थी-कालकी लालसा, सब क्रमशः हृदय-पटप
उदित होते हैं।—मुझे ख्याल आया, एक बार हम लोगोंने स्कूलमे
मुँह बनानेवालोंकी समिति खोली थी। उसके सदस्योंका काम थ
छोटे-बड़े सबके पीछे मुँह बनाना। पर उसके सदस्य ऐसे सावधान
थे कि कभी मुँह बनाते नहीं पकड़े गये। एक बार हम लोग
तम्बोलीकी दूकानपर खड़े हुए थे। एक कोई बड़ा आदमी पान
लगवा रहा था। हमारे एक सदस्यकी इच्छा उसपर मुँह बनानेकी
हुई। पर उसने यह नहीं देखा कि सामने एक बड़ा शीशा लगा
हुआ है। आप उसके पीछे जाकर मुँह बनाने लगे। उस आदमीने
इसे शीशेमें देख लिया, तब वह फिरकर देखने लगा। तब हमारे
साथीने हम लोगोंकी ओर देखकर कहा, "अरे भाई, खूब
जमुहाई आती है, चलो चलें।" वह आदमी तो चला गया; पर
हम लोग हँसते हँसते लोट-पोट हो गये।

जब मैं हिन्दू कालेजमें पढ़ता था तब हरिहरबाबूके उद्यानमें
टहलने जाया करता था। वहाँ मालीसे बड़ी पहिचान,—क्य
घनिष्ठता, हो गई थी। उसका नाम था लक्ष्मण। वह अकेला रहता
था; पर था खूब निर्द्वन्द्व। मैं उससे अपने भविष्यत् जीवनकी बातें
कहा करता था और वह सुना करता था। एक दिन मैंने उससे
कहा, "लक्ष्मण, मैं वकील बनूँगा।" उसने कहा, "तब तो
बाबू, तुम पहले मेरा ही गला काटोगे।" यह सुन मैं हँसने लगा।

वह समय भी आ गया जब मैं कालेजसे निकलकर वकालत
करने लगा। आरंभमें मेरी जो दशा थी उसे मैं ही जानता हूँ।
सबसे पहले मुझे एक मुक़द्दमा मुन्शी गोविन्दप्रसादजीसे मिला।
मुक़द्दमेमें कुछ जान नहीं थी पर उसमें मुझे पाँच सौ रुपये मिले। कहना
नहीं होगा, उन पाँच सौ रुपयोंने मेरा बड़ा उपकार किया। उन

मेरी स्थिति ठीक हो गई । उस दिनसे मुक़दमे भी मुझे बराबर मिलने लगे । आज मैं प्रतिष्ठित वकीलोंमें गिना जाता हूँ; इसका एक-मात्र कारण मुन्शी गोविन्दप्रसाद हैं । जब कभी मैं अपने अतीत जीवनकी बातें सोचता हूँ तो हरिहर बाबूका माली लक्ष्मण और मुन्शी गोविन्दप्रसाद, इन दोनोंका एक बार जरूर स्मरण आ जाता है ।

आज भी इन दोनोंकी सुधि आ गई । जब कमरेमें कुछ अन्धेरा होने लगा तब मैंने नौकरको बुलाकर कहा, "लैम्प जला दे ।" नौकर लैम्प जलाकर चला गया । मैं फिर अपने काममें लग गया । थोड़ी देरमें मुन्शी एक आदमी लेकर आया । उसे देखकर मुझे ऐसा सन्देह हुआ जैसे कि मैंने उसे पहले कभी देखा हो; पर कब, इसका ख्याल नहीं आया । खैर, वह अपनी बात कहने लगा और मैं स्थिर चित्तसे सुनने लगा । उसके कहनेका मतलब यह था कि वह बड़ा गरीब है । उसका एक भाई है । उसकी भी बड़ी बुरी दशा है । उसके काकाके कुछ सम्पत्ति थी; पर किसीने झूठी दस्तावेज़ बनाकर वह सम्पत्ति हड़प कर ली । तबसे वह बड़ी मुश्किलसे मजूरी कर अपना घर चला रहा है । अब उसके भाईपर एक विपत्ति आई है । किसीने चोरीका अपराध लगाकर उसे पकड़ा दिया है पर वह बिलकुल निर्दोष है । यदि मैं उसकी सहायता करूँ, तो वह मेरा बड़ा उपकार मानेगा । बात खतम होनेपर मैंने हाथ बढ़ाया और उसने सौ रुपये गिन दिये । मैंने उसका मामला ले लिया और उसे दूसरे दिन आनेके लिए कह दिया ।

दूसरे दिन गोविन्दप्रसादजी पहुँचे । उमर पचास वर्षसे अधिक थी पर अभी तक बहुत तगड़े थे । मैंने उन्हें आदरपूर्वक कुर्सी दी । गोविन्दप्रसादजीने बैठकर कहा—सुनता हूँ, आपने नारायणका मामला ले लिया है ।

मैं नाम जरा जल्दी भूल जाता हूँ। "कौन नारायण?"

मेरे मुन्शीने कहा, "वही जिसे मैं कल रातको लाया था।"

मैंने कहा, "हाँ, मैंने उसका मामला ले लिया है। क्यों?"

गोविन्दप्रसादजी कहने लगे, "वह बड़ा पाजी है। उसका भाई भी बड़ा बदमाश है। आपको शायद याद होगा, मैंने पहले पहल आपको एक मुक़द्दमा दिया था। उसमें आपको पाँच सौ रुपये मिले थे। वह कैसा साफ़ मामला था। उसमें यह नारायण ही झगड़ता था। जबसे वह हार गया, तबसे यह कहता फिरता है कि मैंने झूठी दस्तावेज़ बनाकर उसके काकाकी सम्पत्ति ले ली है। मैं मौका ढूँढ़ रहा था। अब उसका भाई चोरीमें पकड़ा गया है। अब उसे सजा मिले तो ठीक हो। इसे फिर कभी देख लूँगा।"

मुझे भी गोविन्दप्रसादजीकी बाते सुनकर उसपर बड़ा गुस्सा आया। गोविन्दप्रसादजी फिर कहने लगे, "आपको इससे कितना मिला है?"

मैंने उत्तर दिया, "सौ रुपये।"

गोविन्दप्रसादजीने मुझे दो सौ देकर कहा, "आप कोशिश कीजिए। उसे सजा ज़रूर हो।"

मैं भी उस बदमाशको दण्ड देनेके लिए तैयार हो गया।

गोविन्दप्रसादके चले जानेपर, मैं दूसरे कामोंमें लग गया। इतनेमें वह नारायण आया। उसे देखते ही मैं जल गया, कहने लगा, "क्यों रे, तू समझता है हम झूठा मुक़द्दमा लेते हैं,—जाल किया करते हैं?"

वह हाथ जोड़कर कहने लगा, "हुजूर, आप यह क्या कहते हैं? मैं ऐसा कभी नहीं समझता।"

मैंने क्रुद्ध होकर कहा, "तू यह नहीं कहता फिरता कि गोविन्द-

प्रसादने झूठी दस्तावेज़ बनाई है ? मैं ही तो उनका वकील हूँ।"

वह गिड़गिड़ाकर कहने लगा, "हुजूर, मैं यह नहीं जानता था। आपकी बड़ाई मेरा काका सदा किया करता है। अब हुजूर मारें चाहे छोड़ें। गोविन्दप्रसादकी दस्तावेज़ झूठी थी। पर आपको मैंने कभी झूठा नहीं कहा है। मेरे काकाका कहना है, आपके समान दूसरा वकील कोई नहीं होगा। उनके ही कहनेसे मैं आपके पास आया हूँ। अब आप चाहे जैसा करें।"

उसकी बातोंसे मैं रुष्ट होकर कहने लगा, "तेरा काका है कौन ?"

उसने कहा, "हुजूर, उसका नाम लक्ष्मण है। अब तो वह वृद्ध हो गया है। पहले वह हरिहर बाबूके बगीचेमें माली था।"

यह सुनते ही मैं चौंक पड़ा। लक्ष्मणको मैं भूल नहीं गया था। मुझे उसका कहना याद आया, "बाबू, जब तुम वकील होगे तब सबसे पहले मेरा ही गला काटोगे।" उसका कहना कितना सच निकला ! सबसे पहले मैंने उसका ही सर्वस्व हरण कर वकालतमें नाम कमाया। ग्लानि और पश्चात्तापसे मैं दग्ध होने लगा। नारायणका मामला मैंने फिर ले लिया। उसका भाई साफ छूट गया। वह सचमुच निर्दोष था। जब मैंने गोविन्दप्रसादसे कहा, तब उन्होंने स्वीकार किया कि दस्तावेज़ झूठी थी। मैंने लक्ष्मणके लिए पीछेसे बहुत-कुछ किया पर जो हो गया उसका क्या प्रतीकार हो सकता था ? मेरे मनकी ग्लानि कभी दूर नहीं हुई।

छायावाद

हिन्दीमें छायावादके प्रचारके सम्बन्धमें मैंने एक कथा सुनी थी। वह सच हो या झूठ, मैं उसे यहाँ लिख देना उचित समझता हूँ। यथार्थताका निर्णय-भार पाठकोंपर है।

१

सुशीलाने ब्राह्म-कन्या-विद्यालयमें उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। ललित कलाओंपर उसका बड़ा अनुराग था। काव्य और सङ्गीत-पर तो वह बिलकुल ही मुग्ध थी। इन कलाओंकी उन्नतिके लिए वह अपना सर्वस्व न्योछावर तक करनेके लिए तैयार रहती थी। भाग्यसे उसका विवाह बाबू हरिकिशोरके साथ हुआ। हरिकिशोर बाबू थे तो अरसिक, पर लक्ष्मीकी कृपा-दृष्टि उनपर खूब थी। वे साहित्य-सङ्गीत-कला-विहीन होकर भी साक्षात् पुच्छ-विषाण-हीन पशु नहीं थे।—कमसे कम उन्हें पशु कहनेका साहस कोई नहीं कर सकता था। पर वे सुशीलाके कार्यमें बाधा नहीं डालते थे। सुशीला जैसा चाहती वैसा खर्च करती और वह प्रायः चित्रकारों और कवियोंकी ही सेवामें अपना धन अर्पण करती।

थोड़े ही दिनोंमें सुशीलाका नाम प्रसिद्ध हो गया और वह काव्य और कलाकी मर्मज्ञा समझी जाने लगी। बड़े बड़े साहित्यिक और कला-कोविद उससे भेंट करनेके लिए आने लगे। सुशीला भी उनके साथ काव्य और कलाकी पर्यालोचना कर सुखसे काल-यापन करने लगी।

सुशीलाको एक बातका खेद था। वह यह कि हरिकिशोर बाबू बिलकुल अरसिक थे। उन्हें ललित कलाओंसे जरा भी प्रेम न था।

यह सच है कि कोविदोंकी मण्डलीमें बैठकर आप अपनी स्त्रीकी हाँमें हाँ मिलाते थे पर काव्य और कलाका ज्ञान न रहनेके कारण कभी कभी आपसे बड़ी भद्दी भूल हो जाती थी। समझनेवाले समझ जाते पर आप कभी झेंपते नहीं थे। सुशीलाने अपने पतिकी जड़ता दूर करनेकी खूब कोशिश की। वह हरिकिशोर बाबूको सदैव अपने साथ चित्रागारोंमें ले जाती और वहाँ सभी चित्रकारोंके चित्र दिखलाती, उनका गुण-दोष समझाती पर हरिकिशोर बाबू कुछ समझते तो थे नहीं, केवल विस्फारित नेत्रोंसे अपनी स्त्रीकी ओर ताकते रह जाते। जब कभी किसी कवि-समाजका निमन्त्रण आता तब सुशीला आग्रह करके हरिकिशोर बाबूको ले जाती। पर इधर कविताका पाठ शुरू हुआ उधर आपकी आँखें झप जातीं। जब सुशीलाने देखा कि हरिकिशोर बाबू सुधरनेके नहीं, तब वह हताश हो गई और 'वीणा'-सम्पादक पण्डित देवव्रत शर्मा-की शरणमें गई। उस दिनसे प्रतिदिन वीणा-सम्पादक सुशीलाके घरमें ही आकर साहित्य और कलाकी चर्चा करने लगे।

२

५ सितम्बर सन् १९२१ की बात है। बाबू हरिकिशोरजी अपने पुस्तकालयके एक कोनेमें बैठे 'टाइम्स आफ् इण्डिया' के पन्ने लौट रहे थे। पण्डित देवव्रतजी शेक्सपियर-नाटकावलीकी एक बड़ी सुन्दर जिल्द लेकर देख रहे थे। सुशीला ड्रायडनकी कोई कविता पढ़ रही थी। थोड़ी देरके बाद पण्डित देवव्रतजीने किताबको मेजपर रखकर कहा, "मैं सुशीलादेवीकी सुरुचिकी प्रशंसा करूँगा। उन्होंने पुस्तकोंके बड़े सुन्दर संस्करणोंका संग्रह किया है।" इतना कहकर वे क्षण-भरके लिए रुक गये और गम्भीर स्वरसे बाबू हरिकिशोरकी ओर देखकर कहने लगे, "पुस्तकावलोकनके प्रेमी अनेक होते हैं।

पर पुस्तकोंसे कुछ ही लोगोंका प्रेम होता है। जिनकी कृतियोंसे हमें ज्ञानकी उपलब्धि होती है, उनके प्रति हमारा एक कर्तव्य यह है कि हम उनकी रचनाओंको सुरक्षित रक्खें। पुस्तकालयोंकी स्थापनाका एक उद्देश यह भी है। कुछ लोगोंको पुस्तकोंको संग्रह करनेका बड़ा चाव होता है। इस सदिच्छाकी पूर्तिके लिए वे अपनी ओरसे कुछ भी नहीं उठा रखते। इँग्लैंडके कुछ प्रधान सचिव बड़े पुस्तक-प्रेमी हो गये हैं। ग्लैडस्टन साहबको पुस्तक पढ़ने और संग्रह करनेका बड़ा शौक था। हारले साहब पुस्तक इकट्ठा करनेके शौकीन थे। मेलवर्न साहबने अपने पुस्तकालयमें विचित्र ग्रन्थोंका संग्रह कर रक्खा था। भारतवर्षमें एक ऐसे ही पुस्तक-प्रेमी विद्वानकी कृपासे प्राचीन अरबी और फारसी साहित्यके ग्रन्थ-रत्नोंका अपूर्व संग्रह हुआ है। यह खुदाबख्श लाइब्रेरीमें सुरक्षित है। मैं अमरीकाके एक पुस्तक-प्रेमीका हाल आपको सुनाता हूँ, सुनेंगे ?

हरिकिशोरजीने कहा—मैं सुनूँ या न सुनूँ, सुशीला तो खूब ध्यान-पूर्वक सुन ही रही है।

देवव्रतजी फिर कहने लगे—इनका नाम है जेम्स कार्लटन यंग। इनकी यह इच्छा हुई कि एक ऐसा पुस्तकालय स्थापित किया जाय जिसमें संसार-भरके ग्रन्थ-रत्नोंका संग्रह हो। इनकी स्थिति साधारण थी, इतना धन नहीं था कि वे अपनी इच्छाको पूरा कर सकें। इसलिए ये पहले अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनेमें लगे। इन्होंने कुछ जमीन खरीद ली और उसमें लोगोंको बसाने लगे। इसमें इनको अच्छा लाभ हुआ। ये कहा करते थे, 'भगवान् नई जमीन तो बनाते नहीं, मनुष्योंकी

संख्या-वृद्धि करते जाते हैं। ये लोग रहें तो रहें कहाँ।'—खैर, इनमें कुछ मनुष्योंको इन्होंने रहनेकी जगह दी और उससे अच्छा लाभ उठाया। तब इन्होंने अपने पुस्तकालयकी स्थापनाकी ओर ध्यान दिया। उनकी इच्छा तो यह थी कि संसारके समग्र साहित्यके सभी अच्छे अच्छे ग्रन्थोंका संग्रह किया जाय, पर जब देखा कि यह काम एक मनुष्यके जीवन-कालमें सम्भव नहीं, तब इन्होंने अपने ही समयके ग्रन्थोंको संग्रह करना शुरू किया। जहाँ तक इनसे हो सका वहाँ तक इन्होंने मौलिक संस्करण ही इकट्ठे किये और उनपर ग्रन्थकारोंके हस्ताक्षर भी ले लिये। पहले तो इनको कुछ ही सहायक मिले, पर ये अपने उद्योगपर अटल ही रहे। इसका फल यह हुआ कि इनका पुस्तक-प्रेम देखकर अच्छे अच्छे लोग इनकी सहायता करने लगे। रूमानियाकी राज-महिषी एलिज़ाबेथ, मैडम रगोजन आदि उच्च कुलकी स्त्रियोंने भी इनको सहायता दी। अठारह वर्षतक ये इसी काममें लगे रहे। अन्तमें इन्होंने हज़ारों लाखों पुस्तकें एकत्र कर लीं।—ये छः मोटी मोटी जिल्दोंमें ग्रन्थकारोंके नाम और पते लिख गये हैं, इसीसे इनके संग्रहका कुछ अनुमान किया जा सकता है।

बाबू हरिकिशोरजीने कहा—आपके वृत्तान्तसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। विश्वास है कि सुशीला भी उन्हींका अनुकरण करेगी, गाँवोंकी आमदनी बढ़ाकर उससे अपने पुस्तकालयका संग्रह बढ़ावेगी। अभी तो उसके इस पुस्तक-प्रेमका सारा व्यय मुझे ही उठाना पड़ता है।

सुशीलाने कहा—और पण्डितजी, इनके चुरुटका सारा व्यय मुझे सहना पड़ता है।

हरिकिशोर—चुरुट? अगर चुरुट न होते तो आपका यह साहित्य ही न होता। पण्डितजी, चुरुटोंसे सबसे बड़ा लोकोपकार हुआ है।

सुशीला—अच्छा, एक दिन मैं आपको चुरुटोंके लिए दूँगी। उस दिन आप चुरुटकी साहित्य-सेवापर अपना वक्तव्य सुनावें। —पण्डितजी, आज मैं आपको एक दुःखद समाचार सुनाती हूँ। यह कहकर वह एक सामयिक पत्रका अंश पढ़कर सुनाने लगी। 'जर्मनीके प्रसिद्ध कवि रिचर्ड देमेलकी मृत्यु हो गई। विद्वानोंकी राय है कि नीट्शेके बाद आपके समान शक्तिशाली लेखक दूसरा कोई नहीं हुआ। नीट्शेकी रचनाओंकी तरह आपकी भी रचनायें बड़ी उग्र हैं। लोग आपकी कविताको ज्वालामयी बतलाते हैं। एक समालोचककी राय है कि मनुष्योंके अन्तःकरणके विकासमें जो चिरन्तन द्वन्द्व जागरूक होता है, वही मूर्तिमान होकर आपकी कवितामें विद्यमान हैं। आपकी तरुणावस्थाकी रचनाओंमें युवावस्थाका प्रभाव साफ लक्षित होता है। परन्तु, अवस्थाके साथ आपने इस मोहको भी अतिक्रमण कर लिया और आपकी कवितामें प्रेमका विशुद्ध रूप और आध्यात्मिक भाव आ गये। देमलेकी अन्तिम रचनाओंके विषयमें जर्मनीके प्रसिद्ध औपन्यासिक फान हाफमैन्स्थलने लिखा है कि जो काव्य-कलामें निपुण न होगा, वही देमेलसे स्पर्धा करनेका साहस करेगा। देमेलने अपने अन्तिम जीवन-कालमें सामाजिक जीवन-समस्याहीपर काव्य-रचना की है। कितने ही लोगोंका कथन है कि वाणिज्य और वैभवसे दृप्त जर्मनीके हृदयमें विश्व-विजयकी जो आकांक्षा उद्दीप्त हुई थी, उसका कारण देमेलकी कविता भी है। वहाँके श्रमजीवी संप्रदाय तो आपपर देवताके समान श्रद्धा रखते हैं। आपने मजदूरोंकी उन्नतिके लिए परिश्रम भी

खूब किया। आपकी लोक-प्रियताका अनुमान इतनेहीसे किया जा सकता है कि वहाँ मज़दूर आपकी रचनाओंका वैसा ही आदर करते है जैसे यहाँ लोग गीताका। '

इतना पढ़कर वह चुप हो गई। फिर उसने कहा—पण्डितजी, हिन्दीमें ऐसे कवि कब होंगे ?

पण्डित देवव्रतजीने कहा—मुझे आश्चर्य है कि आप एक विदेशी कविके सम्बन्धमें ऐसे प्रशंसा-पूर्ण उद्गार निकाल रही हैं जब कि हिन्दीमें कृष्णार्जुन 'कान्तजी' के समान कवि विद्यमान हैं। आप 'वीणा' पढ़ा कीजिए। उन्हें हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें लानेका श्रेय मुझे है। उनका छन्दोविन्यास अभूतपूर्व है, भाव भी अलौकिक हैं।—देखिए, कवित्वका रहस्य जाननेके लिए हमें विज्ञानका अध्ययन करना चाहिए, विशेष कर शरीर-विज्ञान और रसायन-शास्त्रका। कविताकी व्याख्या करना सहज नहीं है। बड़े बड़े विद्वानोंने बड़ी बड़ी व्याख्यायें की हैं, पर कविताका रहस्योद्घाटन अभी तक नहीं हुआ है। कवितामें रस और अलङ्कार हैं, चित्र हैं और सङ्गीत है, भाव है और भाषा है, कल्पना है और सत्य है, सौन्दर्य है और ज्ञान है,—अन्तर्जगत् है और वहिर्जगत् है। कविताकी तरह कवि भी रहस्यमय है। कोई उसे उन्मत्त समझता है तो कोई उसे दार्शनिक कहता है। कितने ही विद्वानोंने कविके रहस्य-जालको हटाकर उसका यथार्थ रूप देखनेकी चेष्टा की है, पर कोई भी अपनी चेष्टामें सफल नहीं हुआ है। कविके जीवनकी छोटीसे छोटी बातका पता लगाया गया है, पर कवित्व-स्रोतका उद्गम-स्थान अज्ञात ही है। लोगोंके हाथमें वही कलम है जिससे टेनीसनने कविता लिखी है, परन्तु उस शक्तिका अनुमान तक कोई नहीं कर सकता

जिसकी प्रेरणासे टेनीसनने कविता लिखी है। वह कोई दैवी शक्ति है या शारीरिक शक्ति ? क्या शरीरके साथ उस शक्तिका कोई भी सम्बन्ध नहीं है ?—मनपर शरीरका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। अतएव कविका रहस्य जाननेके लिए कविकी शरीर-क्रिया-पर क्यों न विचार किया जाय ?

यह कहकर देवव्रतजीने बाबू हरिकिशोरकी ओर देखा। हरिकिशोर बाबू समझ गये कि यह दृष्टि-पात किसी लम्बी व्याख्याका सूचक है। उन्होंने तुरन्त एक चुरुट जलाकर पण्डितजीसे कहा—अवश्य। डाक्टर ही कविका मर्मज्ञ हो सकता है।

देवव्रतजीने कहा—बहुत ठीक। कुछ दिन पहलेकी बात है। डाक्टर डेविड ए० एलेग्जेंडर नामक एक व्यक्तिने ब्रिटिश मेडिकल जर्नलमें एक पत्र प्रकाशित किया था। उसमें यह लिखा था कि जब वक्ताओंकी शरीर-क्रियापर किताब लिखी जा चुकी है तब कविके सम्बन्धमें भी वही चेष्टा क्यों न की जाय ? कविता और सङ्गीत मनुष्यको क्यों प्रिय है, इसका कुछ कारण अवश्य होना चाहिए। भावको छन्दोंकी शृङ्खलामें जकड़कर प्रकाशित करना मनुष्यके स्वभावमें है। छन्दोंकी ओर उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्तिका अनुसन्धान करना अनुचित न होगा। विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि मनुष्यकी यह प्रवृत्ति संसारके नियमके प्रतिकूल नहीं है। सङ्गीतमें जिसे 'ताल' कहते हैं वह विश्वकी सभी शक्तियोंकी अभिव्यक्तिमें देखा जाता है। जीवधारीके हृत्पिण्डकी तरह प्रकृतिका विशाल हृत्पिण्ड तालपर स्पन्दित होता है। लेखकने प्रश्न किया था कि क्या श्वास-गतिके साथ छन्दका किसी प्रकार सम्बन्ध स्थापित करना

बिलकुल असम्भव है? षरामात्रिक छन्दोंके साथ तो श्वास-गतिका सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ेगा।

मेरी हैलक ग्रीनवालने लिखा था कि कविकी किसी भी रचनाका सङ्गीत रूपसे विश्लेषण करने पर देखा जाता है कि उसमें राग-रागिनी, ताल, लय, स्वरका उत्थान-पतन,—सभी विद्यमान रहता है। यह बात सिर्फ़ गीति-कवितामें ही नहीं है, किन्तु सभी कविताओंमें है। कविताका यह स्वरूप कभी कभी तो इतना अलक्षित रहता है कि वह किसी प्रकार प्रकट नहीं किया जा सकता, केवल उसका अनुभव किया जा सकता है।

लेखिकाने यह बतलानेकी चेष्टा की थी कि कवितामें छन्दोंका निर्देश नाड़ीकी गति करती है। उनके कहनेका अभिप्राय यह है कि यह विश्व सजीव है। उसका भी हृत्पिण्ड है जिसके स्पन्दनके तालसे समस्त प्रकृति ताल मिलाती है। भौंरोंका गुञ्जार, मयूरोंका नृत्य, व्याघ्रकी छलाँग,—इन सभी क्रियाओंमें विश्वके उस तालकी रक्षा की जाती है। मस्तिष्ककी नसोंपर हृत्स्पन्दनका जो प्रभाव पड़ता है उसीसे भाव-तरङ्गोंका उत्थान-पतन होता है। लेखिकाके कथनानुसार अँगरेज़ी सभी दीर्घ छन्द और अधिकांश छोटे छन्द भी हृत्पिण्डकी 'लप-डप, लप-डप' ध्वनिके बनाये गये हैं।

एक जर्मन विद्वान्ने एक बार यह प्रश्न किया था कि शराब अर्थात् किसी पेय पदार्थपर जितनी कवितायें लिखी गई हैं उतनी किसी खाद्य पदार्थपर क्यों नहीं लिखी गई हैं? वैदिक कालमें भी सोम-रसपर कवित्व-पूर्ण स्तोत्र है, पर किसी मिष्टान्नकी ऐसी प्रशंसा नहीं की गई है। अमृत भी तो पेय पदार्थ है, खाद्य नहीं इसका क्या कारण है? श्रीमती ग्रीनवालका कथन है कि पीनेके समय हृत्पिण्डमें जो उत्तेजना होती

हैं वह खानेके समयमें नहीं नहीं होती है, इसीसे कवितामें पेय पदार्थकी इतनी महिमा है।

हृदयके स्पन्दन, श्वासकी गति अथवा नाड़ीकी चालसे छन्दका निगूढ़ सम्बन्ध है, यह शरीर-शास्त्रवेत्ता ही बतला सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कवि भावावेशमें आकर कविताकी रचना करता है और उस समय उसके शरीरकी एक विशेष अवस्था अवश्य हो जाती है। सब भावोंकी अभिव्यक्तिके लिए सभी छन्द उपयुक्त नहीं होते। कुछ छन्दोंसे विषाद व्यक्त होता है और कुछसे हर्ष। विषाद और हर्षका प्रभाव हृदयपर भी पड़ता है। अतएव यह अनुमान करना सर्वथा उचित है कि हृदयके स्पन्दनके साथ छन्दोंका कुछ सम्बन्ध अवश्य है। इसीसे कान्तजीके छन्द-विन्यासमें अपूर्वता आ गई है। आज साहित्य-सदनमें वे अपनी एक नवीन रचनाका पाठ करेंगे। चलिए, मैं उनसे आपको परिचित करा दूँ।

उसी दिन सुशीलाने पहले पहल कान्तजीका दर्शन किया और उनकी कविता सुनी। पण्डित देवव्रत उनकी कविताकी व्याख्या करते जाते थे। उनकी व्याख्यासे सुशीलाको कविताकी यथार्थ महिमाका ज्ञान हुआ। पण्डितजीने कहा—यह अभिनव जगतकी सृष्टि है। यहाँ आपके प्राचीन साहित्यका रसोन्माद नहीं है। यहाँ है मूक आह्वान, अतृप्त आकांक्षा, अनन्त अभिसार। पथ अज्ञेय है, नायिका अज्ञात है, नायक अपरिचित है,—केवल ज्ञात है उनकी लीला-भूमि। वही हमारा संसार है। हम कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं,—यह कौन जानता है? उसी अज्ञात लोकके अज्ञात प्रियतमका नीरव निमन्त्रण पाकर भी हम आज क्या किसीके कृत्रिम बन्धनोंसे बद्ध रहेंगे?—नहीं, आज सब शृंखलायें तोड़ देंगे। आज हमरी

कल्पना निर्बाध होगी, भाषा स्वतन्त्र, छन्द स्वच्छन्द। तभी संसारका कल्याण होगा।

उसी दिनसे सुशीला कान्तजीकी पदावलीकी अनुरागिनी हो गई।

३

८ अक्टूबरकी बात है। सुशीला ड्राइङ्ग रूममें कान्तजीकी पदावली पढ़ रही थी और हरिकिशोर बाबू मुँहमें चुरुट दबाये 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' के पन्ने उलट रहे थे। कमरेमें निस्तब्धता छाई हुई थी। इतनेमें नौकरने आकर सुशीलाके हाथमें एक कार्ड दिया। सुशीला कार्ड पढ़कर मुस्कराने लगी। हरि बाबूने पूछा—कौन है?

सुशीला—रामनरेश जोशी।

हरिकिशोर—जोशी? ये बनारसके ज्योतिषी तो नहीं हैं, जो लोगोंका हाथ देखकर नाम बता सकते हैं और पैर देखकर सिरकी बातें जान सकते हैं? सचमुच उनमें विलक्षण शक्ति है।

सुशीला—अरे तुम जोशीजीको नहीं जानते? आजकल उनसे बढ़कर चित्रकार इस प्रान्तमें कोई नहीं है। उनके चित्रोंमें भाव रहता है, रङ्ग नहीं; शक्ति रहती है, आकृति नहीं। उस दिन तो मैंने उनका एक चित्र तुम्हें दिखलाया था। चित्रका नाम था 'प्रतिध्वनि।'

हरिकिशोर—प्रतिध्वनि! वही तो नहीं जिसमें एक संन्यासी हाथसे अपना मुँह छिपाये खड़ा है और पासमें एक स्त्री गोदमें एक बच्चा लिये खड़ी है। सचमुच वह सुन्दर चित्र था।

सुशीला—अरे, वह तो राजा रविवर्माका शकुन्तला-जन्म है। मैं तुम्हें कहाँ तक समझाऊँ। रविवर्माके चित्रमें है क्या, सिर्फ़ रङ्ग और रूप। पर जोशीजीके चित्रमें है भाव और शक्ति। तुम तो बिलकुल साहित्य-सङ्गीत-कलाविहीन हो। खैर, अब चुप रहो, जोशीजी आ रहे हैं।

थोड़ी देरमें जोशीजी भीतर आये। उनका शरीर स्थूल था: कृष्ण वर्ण कुञ्चित केश और दीर्घ ललाट। सुशीलाने उठकर उनकी अभ्यर्थना की और हँसकर कहा—अभी हम लोग आपकी चित्र-कलापर ही विवाद कर रहे थे। इनका कहना था कि आपका स्थान टैगौरसे भी ऊँचा है। मैं कहती थी कि तुलना हो ही नहीं सकती।

जोशीजी एक कुर्सीपर बैठकर बोले—यह आपहीकी कृपा है। आपके समान कला-कोविदोंके प्रोत्साहनसे मैं कुछ कर सका हूँ। आपने 'प्रतिध्वनि' में देखा होगा कि मैंने नासिकाको वक्र अङ्कित किया है।

हरिकिशोर बाबू तपाकसे बोल उठे—सचमुच आपने कमाल किया है। हाथ, पैर, आँख, कान और उदरको भी वक्र बनाकर आपने मनुष्य-स्वभावकी वक्रता प्रत्यक्ष कर दी है।

जोशीजीने विनम्र भावसे नतमस्तक होकर कहा—मैं आपका चिर-कृतज्ञ रहूँगा। आपने सचमुच मेरे अन्तर्गत भावको जान लिया, पर मैंने अब अपना आदर्श बदल दिया है।

सुशीलाने जरा चकित होकर पूछा—क्यों?

जोशी—कान्तजीको आप जानती ही होंगी। देखता हूँ, आप भी उनकी मधुर कोमल कान्त पदावलीपर अनुरक्त हैं। मैंने अब अपना आदर्श उनके भावानुकूल बनाया है। उनका कथन है कि प्रकृति अनन्त और अज्ञेय है, यह कहना भ्रम है। निखिल विश्वमें जो नीरव कोलाहल उद्गत हो रहा है वह मनुष्यकी हृत्तन्त्रीपर आघात करता है और तब ज्ञेयाज्ञेय और व्यक्ताव्यक्तमें भेद नहीं रहता। मैंने उन्हींकी एक कविताके आधारपर यह चित्र बनाया है। इसका नाम है छाया। आप देखिएगा, मैं अभी इसे खोलता हूँ, इसमें अस्पष्ट भी किस तरह स्पष्ट हुआ है। विरोधाभास है। यह कलाकी अन्तिम सीमा है।

सुशीला मुग्ध हो गई। हरिकिशोर भी चुप हो गये। तब जोशीजीने

अपना चित्र-पट खोला और सुशीलाके हाथमें दिया। सुशीला औत्सुक्यपूर्ण नेत्रोंसे देखने लगी। बढ़िया फ्रेममें जड़ा हुआ एक बढ़िया आर्ट-पेपर था, बिलकुल स्वच्छ, स्याहीका एक धब्बा भी नहीं। सिर्फ नीचे लिखा हुआ था 'छाया'। सुशीला कोरा कागज़ देखकर भौंचक हो गई। क्या कहे, उसे कुछ भी न सूझा। पर हरिकिशोरने जोशीका हाथ पकड़कर कहा—वाह, वाह, क्या छाया है! कमाल किया आपने। यह तो निर्मल ब्रह्मकी विशद छाया है। बिलकुल स्वच्छ। इन चर्म-चक्षुओंसे भला ब्रह्मका दिव्य दर्शन कैसे हो सकता है? वाह! वाह! क्या चमत्कार है! आपने इस चित्रके अङ्कित करनेमें कितना समय लगाया होगा?

जोशी—तीन रोज़ तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये मैं इस काममें लगा रहा। मैं चाहता था कि अनन्तकी अस्पष्टता स्पष्ट हो जाय। अन्तमें मेरा परिश्रम सार्थक हुआ।

हरिकिशोर—धन्य! धन्य! इसे हम लोगोंका सौभाग्य कहना चाहिए कि तीन दिन तक निराहार रहकर भी आपके शरीरका वजन नहीं घटा।

इतनेमें नौकरने आकर फिर एक कार्ड दिया। सुशीलाने पढ़कर कहा—कवि-सम्राट्‌जी आ रहे हैं। थोड़ी देरमें कवि-सम्राट्‌जीने भी ड्राइङ्ग-रूममें प्रवेश किया। सब लोगोंने उठकर उनकी अभ्यर्थना की। कवि-सम्राट्‌जी कृश-शरीर और गौर-वर्ण थे। सुदीर्घ और चिक्कण केश पीठपर लहरा रहे थे। रेशमी कुरता पहने थे। पैरोंमें राष्ट्रीय पादुका शोभा दे रही थीं। सुशीलाने कहा—अभी हम लोग आपकी ही चर्चा कर रहे थे।

कवि-सम्राट्‌जीने जलद-गम्भीर स्वरसे कहा—आपका अनुग्रह है।

जोशीजीने कहा—मैंने यह छाया-चित्र आपकी सेवामें भेजा था।

कवि-सम्राट्—दिव्य है, अतुल है। मैं तो कृतार्थ हो गया। मैंने इसीके आधारपर एक दूसरी कविता लिखी है। उसे श्रीमतीजीकी सेवामें अर्पण करनेके लिए लाया हूँ।

सुशीलाने प्रसन्न होकर कहा—यह आपकी दया है। मैं तो आपकी शिष्या हूँ।

कवि-सम्राट्जीने जेबसे एक कागज़ निकाल कर दिया। सुशीलाने देखा. वह बिलकुल कोरा कागज़ था। सुशीला घबराकर अपने पतिकी ओर देखने लगी।

हरिकिशोर बाबू बोले—वाह! यह तो वाणीकी नीरवता है, निस्तब्धताका उच्छ्वास है, प्रतिभाका विलास है और अनन्तका विकास है। तब सुशीलाने भी साहस करके कहा—दिव्य है।

कवि-सम्राट्जी बोले—हिन्दीमें अभी कुछ है ही नहीं। छाया-वादका प्रचार करना मेरा कर्तव्य है। हिन्दीमें छायावादके एक आचार्यने कहा था कि छायावादका प्रधान गुण है अस्पष्टता। भाव इतने अस्पष्ट हो जायँ कि वे कल्पनाके अनन्त गर्भमें लीन हो जायँ। मेरी यह सम्मति है कि शब्द अक्षरोंसे बनते हैं और जो अक्षर अविनाशी है वह तो अज्ञेय है, अनन्त है। अतएव हमें भाषाको वह रूप देना चाहिए जिससे वह नीरव हो जाय। वह कर्ण-श्रुत न होकर हृदय-गम्य हो, इन्द्रिय-गोचर न होकर आत्मासे ग्राह्य हो। इसी अभिप्रायसे मैंने यह कविता लिखी है।

सब लोगोंने एक स्वरसे कवि-सम्राट्जीकी प्रशंसा की। ८ बजे रातको कवि-सम्राट् और चित्रकारजी विदा हुए।

९ अक्टूबरको हिन्दी-जगतमें छायावादका प्राधान्य हुआ, पर आश्चर्यकी बात यह है कि उस दिनसे किसी भी सभा समाज़में लोगोंने सुशीलाको नहीं देखा।

अनन्त आशा

मैं अबुल हसनके साथ घर जा रहा था। संध्या हो गई थी। रास्तेमें मैंने देखा कि एक टूटे-फूटे मकानमें एक प्रदीप जल रहा है और एक स्त्री बैठी हुई सड़ककी ओर ताक रही है। मुझे ऐसा जान पड़ा कि आशाकी क्षीण आलोक-रेखाके समान क्षुद्र दीपकी वह मन्द द्युति उस अन्धकारमय गृहको प्राणमय कर रही है। मैंने अपने साथीसे पूछा—इसमें भी कोई रहता है क्या?

वह चौंककर कहने लगा—नहीं; इसमें अब कोई नहीं रहता। सिर्फ रात-भर दिया जलता रहता है। आपको मैं इसकी कथा सुनाता हूँ। यह मकान अहमदका था। आप अदृष्टको मानते हैं? अहमदका जीवन भाग्य-चक्रकी ही कथा है। सुनिएगा?

वह कहने लगा और मैं चुपचाप सुनने लगा—

मनुष्य समझता है कि वह जो कुछ करता है अपनी इच्छासे करता है। परन्तु, कौन कह सकता है कि उसकी इच्छा किसी अदृष्ट शक्तिकी प्रेरणा नहीं है? हम वर्तमानसे ही सन्तुष्ट रहते हैं। परन्तु, वर्तमानमें ही भविष्यका बीज छिपा रहता है। कभी कभी हमारे दैनिक जीवनके साधारण कृत्यका भी परिणाम इतना विलक्षण होता है कि हम उसे देखकर चकित हो जाते हैं। काम कुछ होता है और फल दूसरा होता है। क्या इसे हम अदृष्ट शक्तिका प्रभाव नहीं कहेंगे?

जब अहमदने घर छोड़ा था तब वह नहीं जानता था कि उसे फिर अपना घर देखनेका सौभाग्य प्राप्त होगा। उस समय वह निराश्रय था। पिताकी मृत्युके बाद कुछ दिनोंतक तो उसने अपने मामाके

घरमें पेट पाला। पर एक दिन उसे अपने मामाके घरमें रहना असह्य हो गया। उसी दिन वह चुपचाप घरसे निकल गया। दो-चार रोज तक लोगोंने उसकी खोज की, पर जब उसका पता न चला तब किसीने भी उसके लिए खेद प्रकट नहीं किया।

उसी गाँवमें उसकी एक विधवा फूफी रहती थी। वह गरीब थी, किसी तरह अपना निर्वाह करती थी। वही कभी कभी उसकी याद किया करती थी। आठ सालके बाद उसीके नामसे एक चिट्ठी आई। चिट्ठी रंगूनसे आई थी। विधवाने उसे दूसरेसे पढ़वाकर सुना। मालूम हुआ कि अहमदकी चिट्ठी है। यह भी मालूम हुआ कि अहमद अब गरीब नहीं है। उसने अच्छी रक़म पैदा कर ली है और अब वह रंगूनसे घर लौटकर आ रहा है। अपने भतीजेकी श्री-वृद्धिका हाल सुनकर विधवाकी आँखोंसे स्नेहके आँसू झरने लगे। उसने अपने भतीजेकी मङ्गल-कामनाके लिए दरगाहमें जाकर भेट चढ़ाई।

गाँव-भरमें यह बात फैल गई। सभी लोगोंने अहमदके सौभाग्यसे सन्तोष प्रकट किया।

इस प्रकार, जब गाँवके सभी लोग उत्सुकतासे उसकी राह देख रहे थे तब एक दिन अहमद भी आ पहुँचा। जब उसने घर छोड़ा था तब उसकी उम्र सिर्फ सोलह वर्षकी थी। इस समय वह चौबीस वर्षका युवक था। शरीर वलिष्ठ और कान्तिमान् था। लोग देखकर दङ्ग रह गये। विधवा फूफीके आँसू थमते नहीं थे, उसने बड़े स्नेहसे अपने भतीजेको घरमें रक्खा।

दूसरे दिन ईद थी। अहमद ईदगाहसे घर आ रहा था। अपने घरके पास उसने दो लड़कियोंको देखा। दोनों एक ही उम्रकी जँचती थीं। एकका वर्ण गौर था और दूसरी कुछ साँवली थी। गौर वर्णकी लड़की बड़ी रूपवती थी। उसके चेहरेसे लावण्य टपका

पड़ता था। साँवली लड़की उतनी सुन्दर नहीं थी। तो भी उसकी सौम्य मूर्तिको देखते ही हृदय उसकी ओर आपसे आप खिंच जाता था। अहमदको देखकर दोनों लड़कियाँ ठिठक-सी गईं। अहमद भी उनका रूप देखकर चुपचाप खड़ा रह गया। थोड़ी देरके बाद साँवली लड़की लजाती हुई बोली—मुझे तो पहचानते नहीं होंगे, मैं हमीदा हूँ। यह मेरी छोटी बहन गुलशन है।

अहमदकी पूर्व-स्मृति जाग पड़ी। उसने हँसकर कहा—तुम्हीं हमीदा हो? मेरी हमीदा तो जरा-सी लड़की थी, जो छिपकर मेरे लिए हुक्का लाती थी और मैं उसे अमरूद देता था। अब तुम अमरूद खाती हो या नहीं?

हमीदाने भी हँसकर कहा—तुमने तो खरीदकर कभी मुझे अमरूद दिये नहीं।

दोनों हँसने लगे।

अहमदने पूछा—इधर तुम कहाँ जा रही हो?

हमीदा—तुम्हारे ही घर जा रही हूँ।

तीनों इधर-उधरकी बातें करते घर आये।

उस दिन रातको अहमदको नींद नहीं आई। बड़ी देर तक उसकी आँखोंके सामने हमीदाकी सौम्य मूर्ति घूमती रही। हमीदा अब्दुलकी लड़की थी। अब्दुल गाँवमें धनाढ्य आदमी कहा जाता था। हमीदा मातृ-हीना थी। उसकी मा तभी मर गई थी जब वह साल-भरकी थी। उसके बापूने दूसरा विवाह किया था। गुलशन उसकी दूसरी स्त्रीकी लड़की है। अहमदने मन ही मन निश्चय किया कि यदि अब्दुल अस्वीकार न करे तो वह हमीदासे विवाह करेगा।

दूसरे दिन फ़ुफीने खुद लड़कियोंकी चर्चा छेड़ दी। बात ही

वातमें वह समझ गई कि अहमद किसको चाहता है। उसी दिन शामको वह अब्दुलके घर गई और वहाँ उसने हमीदासे अहमदका विवाह एक प्रकारसे पक्का कर लिया। विवाहका दिन निश्चित नहीं हुआ। अहमद नया मकान वनवा रहा था, इसलिए यह सोचा गया कि मकान वन जानेके बाद किसी दिन विवाह हो जायगा।

एक दिन प्रातःकाल खूब तड़के अहमद पोखरेकी ओर घूमनेके लिए चला गया। वहाँ उसने गुलशनको किनारेपर बैठे हुए देखा। उस समय सूर्योदय नहीं हुआ था। चारों ओर बिलकुल शान्ति थी। गुलशन भी चुपचाप बैठी पानीकी ओर ताक रही थी। अहमदने गुलशनको कई वार देखा था। पर इस सौन्दर्यकी कल्पना तक उसने नहीं की थी। वह बिलकुल विमुग्ध होकर उस अपूर्व रूप-राशिको देखने लगा। थोड़ी देरमें गुलशनका ध्यान भङ्ग हुआ। उसने लौट-कर देखा तो अहमद खड़ा हुआ उसकी ओर सतृष्ण दृष्टिसे देख रहा है। क्षण-भरके लिए गुलशनका मुख लज्जासे लाल हो गया। इसके वाद वह उठकर चुपचाप चली गई। अहमद उसको देखता रहा।

जब वह दृष्टिके वाहर हो गई तब अहमदकी बुद्धि लौट आई। लज्जासे उसका शरीर पसीना पसीना हो गया। वह सोचने लगा कि गुलशनने मुझे इस अवस्थामें देखकर क्या समझा होगा। थोड़ी देर तक वह इसी चिन्तामें पड़ा रहा। इसके वाद वह घर लौट आया। आज उसकी फूफीने हमीदाके विषयमें अनेक वातें कहीं, पर अन्यमनस्क होनेसे वह उन वातोंको अच्छी तरह सुन भी नहीं सका।

अहमद प्रायः प्रतिदिन अब्दुलके घर जाता था। अब्दुल और उनकी स्त्री दोनों उससे बड़े खुश थे। पर दो दिन तक वह उनके घर जानेका साहस नहीं कर सका। तीसरे दिन

उसे जाना ही पड़ा। वह रास्तेमें सोचता था कि गुलशन मुझे देखकर क्या कहेगी। ज्यों ही उसने घरके भीतर पैर रक्खा त्यों ही सबसे पहले गुलशनपर ही उसकी दृष्टि पड़ी। वह दरवाज़ेके पास ही खड़ी थी। अहमद उसे देखकर रुक गया। गुलशनने पास आकर कहा—आज तो आप तीन दिनके बाद आये हैं, क्या कुछ तबीयत खराब हो गई थी?

अहमदने धीरेसे उत्तर दिया—जी नहीं, मैं एक काममें लगा हुआ था।

गुलशन—घरमें तो अभी कोई नहीं है। हमीदाको लेकर अम्मा मामाके घर गई हैं। अब आती ही होंगी। बाबा इन्स्पेक्टरसे मिलनेके लिए गये हैं। आप यहीं बैठिए।

अहमद चुपचाप गलीचेके एक कोनेमें बैठ गया। परन्तु, उसका हृदय धड़क रहा था। एक बार उसने साहस करके सिर उठाया। देखा, गुलशन उसे देखकर हँस रही है।

अहमदने फिर सिर नीचा कर लिया। गुलशन कहने लगी—क्यों साहब, आप इतना शरमाते क्यों हैं?

गुलशनके इतना कहनेपर अहमदने अपना सिर उठाकर उसकी ओर देखा। इस बार गुलशनने सिर नीचा कर लिया।

अहमद कुछ देर तक उसकी ओर चुपचाप निर्निमेष दृष्टिसे देखता रहा। फिर उसने धीरेसे कहा—गुलशन, मैं तुम्हारे लिए योग्य नहीं हूँ। पर क्या तुम मुझे क्षमा करोगी? मैं नहीं कह सकता कि मुझे क्या हो गया है। पर अब तुम्हारे बिना—

अहमद आगे कुछ नहीं कह सका। किसीके आनेकी आहट मालूम हुई। वह चुपचाप जहाँका तहाँ बैठ गया। गुलशन भी कुछ शङ्कित-सी खड़ी रही। इसके बाद वह कमरेके बाहर चली गई।

उसी दिन रातको अहमदने अपनी फूफीसे अपनी इच्छा स्पष्ट कह दी। फूफी अवाक् हो गई। उसने कहा—बेटा, मैंने तो यह समझा था कि तुम हमीदासे विवाह करना चाहते हो। इसीसे मैंने उसीसे तुम्हारा विवाह ठीक किया था। मुझसे इतनी भूल जरूर हुई कि मैंने तुमसे साफ़ साफ़ पूछ नहीं लिया।—बेटा, हमीदा बड़ी सुशील लड़की है, यों तो गुलशन भी अच्छी है।

अहमदने कुछ उत्तर नहीं दिया। पर उस दिनसे वह विषण्ण-सा रहने लगा। आखिर एक दिन उसकी फूफीने कहा—बेटा, मैं जाती हूँ, जरा गुलशनकी माँसे बातचीत कर आऊँ।

अहमद बड़ी व्यग्रतासे अपनी फूफीकी राह देखने लगा। जब वह लौट कर आई तब सङ्कोचके कारण अहमदने कुछ पूछा नहीं, पर उसकी फूफीने खुद ही कहा—बेटा, अगले जेठमें गुलशनके साथ तुम्हारा विवाह पक्का है। आज तुम्हारे भावी ससुरने तुमको बुलाया है। और भी लोग आवेंगे।

उस दिन अहमद नौ बजे रातको लौटा। चाँदनी छिटकी हुई थी। उसका चित्त भी प्रफुल्लित था। वह नदीके किनार टहलता हुआ क़ब्रिस्तानकी ओर निकल पड़ा। जब वह क़ब्रिस्तानके पास पहुँचा तब उसे वहाँ कोई स्त्री-सी दिखलाई पड़ी। उसको कुछ आश्चर्य हुआ कि यहाँ इतनी रातको कौन स्त्री आई है। वह चुपचाप एक पेड़की आड़में खड़ा हो गया। थोड़ी देरमें चन्द्रमाका उज्ज्वल प्रकाश मेघसे निर्मुक्त हो क़ब्रिस्तानपर अच्छी तरह फैल गया। अहमदने देखा कि हमीदा अपनी माकी क़ब्रपर सिर नीचा किये बैठी है। अहमदके हृदयमें चोट-सी लगी। थोड़ी देरमें हमीदा क़ब्रिस्तानके बाहर

निकली। उसका मुख बिलकुल शान्त था, न उसमें हर्ष था और न विषाद। उसके बाहर निकलते ही अहमदसे न रहा गया। उसने कम्पित स्वरसे कहा—हमीदा।

हमीदा पहले चौंक पड़ी। परन्तु ज्यों ही उसने अहमदको देखा, त्यों ही वह शान्त हो गई। उसने बड़े मीठे स्वरसे कहा—कौन है, भैया अहमद?

अहमदने कहा—हाँ हमीदा, मैं हीं हूँ। तुम यहाँ कैसे आईं?

हमीदाने शान्त स्वरसे उत्तर दिया—मैं अम्माकी क़ब्रपर फूल चढ़ाने आई थी।

अहमदने आगे बढ़कर गद्गद कण्ठसे कहा—हमीदा, मैंने यदि तुम्हारे हृदयको किसी तरहकी चोट पहुँचाई हो, तो मुझे क्षमा करो। मैं सच कहता हूँ, मुझसे बढ़कर नीच दूसरा कोई नहीं होगा।

हमीदाने प्रेमसे कहा—भाई मेरे, आजसे तुम मेरे भाई हुए हो और मैं तुम्हारी बहन हुई हूँ। भला, भाई क्या बहनका कोई अपराध करेगा और उससे क्षमा माँगेगा?

अहमदने कहा—तुम स्त्री नहीं, देवी हो।

जिस दिन गुलशनके साथ अहमदका विवाह हुआ, उसी दिन हमीदाका विवाह बिलासपुरके धनी ज़मींदार नज़ीरके साथ निश्चित हुआ। थोड़े दिनोंके बाद हमीदाका विवाह हो गया और वह बिलासपुर चली गई।

कहते हैं कि एकके जीवनके साथ दूसरेका जीवन सम्बद्ध रहता है। स्वयं कुछ न करके भी कोई एक किसी दूसरेके भाग्यका विधाता होता है। यदि यह बात न होती, तो हमीदाका विवाह अहमदसे ही क्यों न हुआ?

२

अहमदके कुछ दिन तो गाँवमें कट गये। पर अधिक समय तक वह वहाँ नहीं रह सका। इसी समय उसके एक परिचित व्यापारीने उसे अपनी दूकानमें एक जगह देनी चाही। अहमदने उसको स्वीकार कर लिया। भाग्यवश उसको विलासपुरमें जगह मिली। वहीं वह अपने स्त्रीको लेकर रहने लगा।

गुलशनको अपने सौभाग्यका बड़ा गर्व था। वह अपने पतिकी प्रियतमा थी। उसने कभी किसी प्रकारके अभावका अनुभव नहीं किया। जब वह विलासपुरमें आकर रहने लगी तब वह धनिकोंका वैभव देखने लगी। उसने वैसा ऐश्वर्य कभी नहीं देखा था। इससे वह पहले पहल तो चकित-सी हो गई; परन्तु, उसने उस ऐश्वर्यकी कामना कभी नहीं की। उसे अपने पतिके स्नेह-धनके सामने विलासपुरकी समस्त सम्पत्ति तुच्छ जान पड़ती थी।

विलासपुरमें कुछ महीने रहनेके बाद एक दिन उसने हमीदाके घर जाना चाहा। जबसे वह आई तबसे उसने कई बार हमीदासे भेट करनेकी इच्छा की। परन्तु, उसको मौक़ा कभी नहीं मिला। हमीदाके पति नज़ीर प्रायः अपने गाँवमें ही रहते थे। उनकी दूकानका काम नौकर देखते थे। सालमें दो ही चार महीने वह विलासपुरमें रहते थे। जबसे गुलशन विलासपुर आई थी, तबसे हमीदा एक दिनके लिए भी विलासपुर नहीं आ सकी।

आख़िर, एक दिन वह आई। गुलशनने बड़े प्रेमसे उसका स्वागत किया। थोड़ी देर बैठनेके बाद उसने गुलशनको अपने घर चलनेके लिए कहा। गुलशनको कोई काम तो था नहीं, वह हमीदाके साथ चलनेको राज़ी हो गई।

बाहर आनेपर उसने देखा कि एक सुन्दर फिटन गाड़ी खड़ी है। पूछनेसे मालूम हुआ कि वह गाड़ी हमीदाकी ही है। उस समय न जाने क्यों गुलशनके हृदयमें कुछ चोट-सी लगी।

जब वह हमीदाके घर पहुँची तब उसने देखा कि मकान छोटा तो है परन्तु बहुत सुन्दर बना है। घरमें असबाब भी काफी है। उसको देखनेसे यह साफ़ पड़ता था कि इस घरका मालिक श्रीसम्पन्न है। उन सब चीज़ोंको देखकर गुलशनके हृदयमें कितने ही प्रकारके भाव उठने लगे। वह इतनी नीच नहीं थी कि हमीदासे ईर्ष्या करे। परन्तु, इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने घरको हमीदाके घरसे किसी प्रकार कम नहीं देखना चाहती थी।

आजतक वह कभी अपनी स्थितिसे असन्तुष्ट नहीं हुई थी; परन्तु, अब उसके हृदयमें असन्तोषका भाव फैलने लगा। उसने मनमें प्रतिज्ञा की कि चाहे जो हो, मैं भी एक फ़िटन गाड़ी रक्खूँगी और अपने घरको इसी तरह सजाऊँगी। जब वह घर लौटने लगी तब रास्तेपर इसी उधेड़-बुनमें पड़ी रही।

जब अहमद कामसे लौटा तब गुलशनने उससे हमीदाके आनेकी बात कही। बात ही बातमें उसने पूछा—भला, यह तो बताओ, तुमने कभी हमीदाका घर देखा है?

अहमद—देखा क्यों नहीं है, मैं तो वहाँ कई बार गया हूँ। वहाँकी एक एक चीज़ पहचानता हूँ।

गुलशन—उसके लिए उन्होंने कितना खर्च किया होगा?

अहमद—यही दस-बारह हज़ार लगे होंगे।

गुलशन—दस-बारह हज़ार? मेरे पास तो सब मिलाकर तीन हज़ारसे अधिककी सम्पत्ति न होगी।

अहमदने हँसकर पूछा—क्या तुम्हारी भी इच्छा वैसा ही घर घर वनवाने और वैसा ही असबाब खरीदनेकी है ?

गुलशनने अहमदका हाथ पकड़कर कहा—सच कहती हूँ, जबसे मैंने उसका घर देखा है, तवसे मेरी यही लालसा है। मैं भी उसी तरह क्यों न रहूँ जिस तरह वह रहती है ?

अहमद—गुलशन, तुम तो अपने रूपसे ही उसके सारे घरकी चमकको दूर कर सकती हो। भला, तुम्हें यह चाह क्यों हुई ?

गुलशन—तुम तो हँसी करते हो। पर यदि मेरे पास वैसा ही सामान हो जाय तो मेरी सारी लालसायें पूरी हो जायँ।

अहमद—अगर मैं तुम्हारी लालसायें पूरी कर दूँ तो ?

गुलशन—सच कहते हो ? झूठी बात। तुम इतना रुपया कहाँ पाओगे ?

अहमद—रुपया पाना कठिन ज़रूर है, पर असम्भव नहीं है। कोशिश करनेसे दस हज़ार रुपया इकट्ठा करना बड़ी मुश्किल बात नहीं है।

गुलशन—सच ? अच्छा कितने दिनोंमें तुम दस हज़ार रुपया पैदा कर लोगे ?

अहमद—अगर खुदाकी मर्ज़ी होगी तो एक ही सालके भीतर में दस हज़ार ला दूँगा, पर एक बात है।

गुलशन—वह क्या ?

अहमह—मुझे रंगून जाना पड़ेगा।

गुलशन—रंगून ? सो तो होनेका नहीं। मैं तो तुम्हें रंगून न जाने दूँगी। जीवन-भर ऐसी ही बनी रहूँ, यह मुझे स्वीकार है, पर तुम्हें आँखोंके ओट न करूँगी।

अहमद—क्यों, मैं तो रंगून हो आया हूँ। वहाँ छः साल तक रह भी चुका हूँ। वहाँ डर क्या है?

गुलशन—नहीं नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम यहीं रहो।

अहमद—सुनो गुलशन, आज तुमने मेरी आँखें खोल दीं। मुझे भी अब कुछ पैदा करना चाहिए। सिर्फ कमाने-खानेसे काम नहीं चलेगा। इसलिए अगर तुम इज़ाज़त दो, तो, मैं सचमुच रंगून जाऊँगा। वहाँ मेरे लिए अनेक सुविधायें हैं। एक सालकी बात है। उसके बाद तुम्हें किसी प्रकारकी कमी नहीं रहेगी।

गुलशन रोने लगी; पर, बहुत समझाने-बुझाने पर वह राज़ी हो गई।

दूसरे दिन अहमद अपने जानेका बन्दोबस्त करने लगा। भाग्य उसके अनुकूल था। थोड़े ही दिनोंमें उसे एक अच्छा मौका मिल गया। अपने मालिककी सहायतासे उसने कलकत्तेके एक व्यापारीसे बातचीत करके सब ठीक कर लिया। निश्चय यह हुआ कि पन्द्रह दिनके बाद अहमद रंगूनके लिए रवाना हो जायगा।

जब वह यह समाचार लेकर घर लौटा तब समझता था कि गुलशन यह सुनकर खुश होगी। पर ज्यों ही उसने गुलशनको सब हाल सुनाया, त्यों ही वह फूट फूट कर रोने लगी। अहमदने उसे खूब समझाया। ये पन्द्रह दिन गुलशनके लिए अच्छे नहीं थे। उसका चेहरा कुम्हला गया। वह शङ्कित भी रहने लगी। अन्तमें विदाका दिन आया। सजल नेत्रोंसे उसने पतिको विदा दी। उसका दिल टूटा जाता था, किसी तरह वह अपनेको सँभाले रही। ज्यों ही अहमद रवाना हुआ, त्यों ही वह बिस्तरपर लेटकर फूट फूट कर रोने लगी।

हमीदाका विवाह अहमदसे क्यों न हुआ, और यदि उससे न हो सका तो विलासपुरके नज़ीरसे ही क्यों हुआ ?

३

एक वर्ष अधिक नहीं होता। किसी तरह एक वर्ष व्यतीत हुआ। महीनेमें दो बार अहमदकी चिट्ठी आती थी, उसीसे वह सन्तोष कर लेती थी।

अन्तिम पत्रमें अहमदने अपने आनेकी सूचना दी। यह भी लिखा कि उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। उसने यथेष्ट सम्मत्ति एकत्र कर ली है। जिस दिन अहमद लौटकर आया उस दिन गुलशनकी विचित्र दशा हो रही थी। इधर हर्ष था तो उधर एक वर्षका छिपा हुआ वियोग-दुःख उमड़ पड़ा था। वह हँसती थी और रोती थी। मुखमें हँसी थी और नेत्रोंमें जल।

कुछ ही दिनोंमें गुलशनकी लालसा पूरी हो गई। एक फिटन गाड़ी भी आ गई। अच्छा मकान बन गया। असबाब आ गया। उसने समझा कि यदि उसकी वैसी लालसा न होती तो कदाचित् यह समृद्धि भी हाथ न आती। परन्तु, क्या लालसाका अन्त समृद्धिमें ही होता है? लालसा सभी करते हैं, परन्तु किसी किसीकी ही लालसा पूरी होती है। क्यों होती है, यह कौन जानता है?

गुलशनका समय सुखसे व्यतीत होने लगा। एक वर्षके बाद उसको एक पुत्र हुआ। पुत्र-जन्मके उत्सवमें अहमदने खूब खर्च किया। हमीदा भी आई। उसको भी एक लड़का था। दोनों बहनें बड़े प्रेमसे बातें करती रहीं। बात ही बातमें गुलशनने नज़ीरका हाल-चाल पूछा। तब उसे मालूम हुआ कि वह आजकल किसी चिन्तामें पड़ा हुआ है। सम्भव है कि उसकी सारी सम्पत्ति बिक

जाय। अन्तमें हमीदाने कहा—बहन, खुदा मालिक है। जिसने पैदा किया है वही हम लोगोंको खानेके लिए भी देगा।

यह नहीं कहा जा सकता कि हमीदाका हाल सुनकर गुलशनको हर्ष हुआ। उसको दुःख अवश्य हुआ, पर अपनी स्थितिसे उसको अधिक सन्तोष हुआ।

इसके बाद हमीदासे गुलशन भेट न कर सकी। नजीर किसी कामसे बाहर चला गया। पर पर जब वह लौटा तब अतुल सम्पत्तिशाली होकर लौटा। हमीदा गुलशनको अपने घर ले गई थी। वहाँ गुलशनने जो कुछ देखा उससे उसका सिर घूमने लगा। हमीदाका लड़का राजकुमारकी तरह घूम रहा था। उसकी देख-रेखके लिए दो नौकर लगे थे। गुलशन अपना सारा दर्प भूल गई। वह चुपचाप घर लौट आई। घरमें अहमदने पूछा—कहो, हमीदाका क्या हाल-चाल है?

गुलशन चुप रही। गुलशनको चुप देखकर अहमदने हँसकर कहा—जान पड़ता है, तुम फिर उसके रोबमें आ गई हो गुलशन, खुदाकी जो मर्जी होती है वही होता है।

गुलशनने कहा—यह सच है। परन्तु मैं यह नहीं सह सकती कि उसका लड़का राजकुमारकी तरह घूमे और मेरा बच्चा भिखमङ्गेकी तरह उसके सामने खड़ा हो।

इतना कहकर गुलशन रो पड़ी। अहमद चुपचाप कुछ सोचता रहा। कुछ देरके बाद उसने सिर उठाकर कहा—गुलशन, क्या तुम क्या इतना धन चाहती हो जितना किसीके पास कभी न हो?

गुलशनने पतिका हाथ पकड़कर कहा—मैं कसम खाकर कहती हूँ, मैं किसीसे ईर्ष्या नहीं कर सकती, परन्तु मैं कह नहीं सकती,

आज उसके लड़केको राजकुमारकी तरह देखकर अपने बच्चेके लिए मुझे क्यों तरस आ गया।

अहमदने उठकर गुलशनके सिरपर हाथ रक्खा और कहा—गुलशन, इस बार फिर जाऊँगा। कहाँ जाऊँगा, यह मैं तुम्हें नहीं बतलाऊँगा। नहीं, तुम रोको मत। मैं जाऊँगा और तुम्हारे लिए इतनी सम्पत्ति लाऊँगा जितनी आजतक किसीने न देखी होगी। पर गुलशन, इस बार मैं यह नहीं कह सकता कि कब लौटूँगा। सम्भव है दो वर्षमें लौटूँ, सम्भव है चार वर्षमें लौटूँ। पर मैं लौटूँगा जरूर, याद रखना।

गुलशनने उसे रोकनेकी बहुत कोशिश की, परन्तु वह चला गया।

एक वर्ष व्यतीत हुआ, दूसरा वर्ष बीत गया। अहमद नहीं आया। गुलशन घबराने लगी। तीसरा वर्ष घबराहटमें चला गया। अहमदका कुछ पता नहीं चला। गुलशन प्रतिदिन दरगाह जाती, पतिकी मंगल-कामनासे कितनी ही भेटें चढ़ाती, फकीरोंसे दुआ माँगती फिरती। पर चौथा-पाँचवाँ वर्ष भी बीत गया, अहमदका हाल किसीने कुछ नहीं बतलाया। गुलशन पगली-सी हो गई।

हमीदाने नज़ीरसे अहमदका पता लगानेके लिए कहा। नज़ीरने बड़ी दौड़-धूप की। एक दिन कलकत्तेमें उसकी एक आदमीसे भेंट हो गई। उसकी बातोंसे मालूम हुआ कि वह रंगूनमें रहता है। नज़ीरने उससे अहमदका हाल पूछा। उसने कहा—अहमद? वही अहमद तो नहीं जिसका घर विलासपुरमें है?

नज़ीरका हृदय धड़क उठा। उसने कहा—हाँ साहब, मैं उसी अहमदकी बात पूछता हूँ।

वह बोला—कोई सात वर्षकी बात है, अहमद रंगूनके लिए जहाजपर चढ़ा। पर वह जहाज रास्तेमें डूब गया।

इसके बाद हमीदा गुलशनको अपने घर ले गई। पहले तो वह राजी नहीं हुई। वह समझती थी कि वे लोग मुझे बहकाकर मेरे पतिसे अलग रखना चाहते हैं। अन्तमें वह किसी तरह राजी हुई। पर रोज सन्ध्याके समय वह अपने घरमें आकर दिया जलाकर बैठी रहती है। उसे विश्वास है कि उसका पति अवश्य आवेगा। उसकी आशा अनन्त है।

कौन जानता है, इस आशाका अन्त कहाँ होगा!—इस आकांक्षाकी निवृत्ति कहाँ होगी!

अबुल हसन यह कहानी कहकर चुप हो गया। मैंने लौटकर देखा, चारों ओर अँधेरा हो गया था, सिर्फ उसी घरमें दीपकी क्षीण ज्योति अभी तक झिलमिला रही थी।

धर्मका रहस्य

धर्मका रहस्य जानना बड़ा कठिन है। धर्मका पथ तो श्रेयस्कर है, तब उसमें असहिष्णुता क्यों है? हम लोग अन्य धर्मावलम्बियोंको अच्छी दृष्टिसे नहीं देखते,—उनके सम्बन्धमें बुरी बातें ही कहा करते हैं। हिन्दू होनेके कारण ऐसे ईसाइयोंके प्रति मेरी ज़रा भी सहानुभूति नहीं थी जो पहले हिन्दू थे और अब ईसाई हो गये हैं। मैं ऐसे लोगोंको आचार-भ्रष्ट मानता था। परन्तु, एक ही घटनाने मेरी मति बदल दी। वह यों हुई—

कुछ समय पहलेकी बात है। मैं छुट्टी लेकर घर जा रहा था। जबलपुरके स्टेशनपर अचानक रमाशङ्करसे भेंट हो गई। जब मैं जबलपुरके हितकारणी हाईस्कूलमें मास्टर था, तब वह उसी स्कूलमें पढ़ता था। उसने तो मुझे पहचान लिया, पर मैं उसे नहीं पहचान सका। जब उसने मेरे पैरोंको छूकर अपना परिचय दिया तब मैंने उसको पहचाना। मैंने उससे कहा—भाई, बहुत दिनोंके बाद तुम्हें देखा, इसीलिए मैं तुमको पहचान नहीं सका। उस समय तो तुम लड़के थे, अब मुझसे भी चार अँगुल ऊँचे बढ़ गये हो। फिर पूरे साहब बन गये हो। तब मैं भला यह कैसे जान सकता हूँ कि इस सर्जके सूटके भीतर मेरा रमाशङ्कर छिपा हुआ है। खैर, अपना हाल-चाल कहो।

रमाशङ्करने कहा—पण्डितजी, अपना हाल चाल क्या कहूँ? जबसे मैंने कालेज छोड़ा है, तबसे मैं घूमता ही रहा हूँ। कभी यहाँ तो कभी वहाँ। अब कुछ दिनोंसे नागपुरमें स्थिर हूँ।

मैं—भाई, गाड़ी आनेमें अभी देर है। कुछ अपनी ही कहानी सुनाओ, समय तो कटे।

रमाशङ्कर कहने लगा—मेरी कहानी सुनोगे? पर मैं अपनी कौन-सी कहानी सुनाऊँ? अच्छा एक कहानी कहता हूँ। सुनिए—

नागपुरके हिस्लप कालेजमें एक लड़का पढ़ता था। उसका नाम था रमेशदत्त। उसे अपनी सच्चरित्रताका बड़ा गर्व था। इसका कारण कदाचित् यह था कि उसके पास दूसरी ऐसी कोई चीज़ नहीं थी जिसका वह गर्व कर सके। धनीके पुत्रको अपने धनका गर्व होता है। जो बुद्धिमान होते हैं वे अपनी बुद्धिका गर्व करते हैं। दुर्भाग्यवश रमेशदत्तके पास न ऐसा धन था और न ऐसी बुद्धि जिसका वह गर्व कर सके। इसीलिए, वह अपने चरित्रकी रक्षा बड़ी सावधानीसे करता था। झूठसे उसे घृणा थी। किसीको अपशब्द कहना वह जानता ही न था। दूसरोंकी सेवा-शुश्रूषामें वह सदा रत रहता था। यदि कोई उसका अपमान करता तो वह ध्यान नहीं देता था। पर यदि कोई उसके सामने किसी दुर्बलपर अत्याचार करता तो वह तुरन्त ही उससे भिड़ जाता। उसकी देहमें बल भी इतना था कि वह अकेले चार-पाँच आदमियोंका सामना कर सकता था। एक बार दो गोरोंने उसके सामने एक मज़दूरनीको कुछ बुरे शब्द कहे। रमेशने अकेले ही उनको खूब पीटा। आज-कल नवयुवकोंमें सदाचारकी मात्रा कम है पर वही एक ऐसा लड़का था जिसने कभी किसीके साथ हँसी तक नहीं की। कालेजके कुछ लड़के उसे ढोंगी कहते थे। पर वह किसीकी परवाह न करता था। वह जानता था कि उसका चरित्र बिल्कुल निर्दोष है। इसीलिए जब वह चलता था तब मस्तकको ऊँचा कर चलता। उसने देखा कि समाजमें जो लोग बड़े प्रतिष्ठित गिने जाते हैं उनमें अधिकांश चरित्र-हीन होते हैं। इसीलिए, उसने कभी किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिके

आगे अपना मस्तक नत नहीं किया। वह कहा करता कि धन और विद्यामें मुझसे कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो, पर मनुष्यत्वकी दृष्टिसे मैं किसीसे कम नहीं। चरित्र-हीन लोगोंकी श्रेष्ठताको स्वीकार करना मनुष्यत्वका अनादर करना है। दूसरे लड़के, विशेषकर धनियोंके लड़के, उसके इस गर्वको देख नहीं सकते थे। वे लोग सदैव ऐसा अवसर ढूँढ़ते रहते जिससे उसे नीचा दिखाया जा सके। परन्तु उन्हें ऐसा अवसर कभी नहीं मिला।

रमेशदत्त ब्राह्मण था, इसीलिए वह ब्राह्मणोंके मेसमें खाता था। एक बार रघुनंदन शास्त्री नामके एक पण्डित किसी कामसे नागपुर आये। वहाँ एक लड़का उनका रिश्तेदार था। शास्त्रीजी उसी लड़केके कमरेमें ठहरे। खानेके समय सब लड़के एकत्र हुए। ब्राह्मण रसोइयेने परोसना शुरू किया। बात ही बातमें किसी लड़केने रमेशदत्तसे शास्त्रीका परिचय कराया।

शास्त्रीने पूछा—आपका निवास-स्थान कहाँ है?

रमेशदत्तने कहा—सागर।

शास्त्री—सागर? क्या आप पण्डित योगेशदत्तको जानते हैं?

रमेश—मैं उन्हींका पुत्र हूँ।

भोजन परोसा जा चुका था, पर शास्त्रीजी एकाएक आसन छोड़ कर उठ खड़े हुए और बोले—मैं यहाँ नहीं खा सकता।

लड़केने पूछा—क्यों?

पहले तो शास्त्रीजीने कुछ नहीं कहा, पर जब लड़केने बहुत आग्रह किया तब उन्हें विवश होकर कहना पड़ा—मैं रमेशदत्तके साथ बैठकर नहीं खा सकता।

रमेशदत्तकी आँखें लाल हो गईं। उसने कहा—शास्त्रीजी, मुझमें आपने ब्राह्मणत्वका कौन-सा लक्षण नहीं पाया है?

शास्त्री—बेटा, मैं यह बतलानेमें असमर्थ हूँ।

रमेशदत्त—शास्त्रीजी, संसार मेरे चरित्रकी परीक्षा कर सकता है। यहाँ ऐसे ब्राह्मणोंका अभाव नहीं है जिनके कृत्य उन्हें शूद्रोंसे भी अधिक अधम बना सकते हैं। पर उनके साथ बैठकर खानेमें आपको आपत्ति नहीं है।

शास्त्री—बेटा, जो ब्राह्मण हो वह ब्राह्मणत्वका गर्व करे।

रमेश—तो क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूँ?

शास्त्री—बेटा, मुझे विवश होकर कहना पड़ता है कि चरित्रवान् होनेपर भी तुम ब्राह्मण नहीं हो।

रमेश—क्यों?

शास्त्री—क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे समान पुत्रके रहते हुए भी तुम्हारे पिताने संन्यास क्यों लिया?

रमेश—नहीं।

शास्त्री—वह इसलिए कि तुम्हारे पिता ही तुम्हें ब्राह्मण नहीं समझते। उन्होंने तुम्हें इस योग्य नहीं समझा कि तुम उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करनेके अधिकारी हो सको।

रमेशका माथा घूम गया, उसे आगे पूछनेका साहस नहीं हुआ। परन्तु, आज तक उसने अपनी जिस पवित्रताकी रक्षा अमूल्य निधि समझ कर की थी उसीपर आघात हो रहा था। उसने चिल्लाकर कहा—शास्त्रीजी, बतलाइए मैं क्यों अधिकारी नहीं समझा गया?

शास्त्री—क्यों कि तुम्हारी माता शूद्र-कन्या थी।

रमेशदत्तका गर्वोन्नत मस्तक नीचा हो गया।

उसी दिन उसने बोर्डिङ्ग हाऊस छोड़ दिया पर उसके हृदयमें एक ज्वाला भभक उठी। दिन-भर वह शहरमें घूमता रहा, परन्तु, उसे क्षण-भरके लिए भी शान्ति नहीं मिली। शाम हो गई।—रात

होने लगी। एक दूकानके सामने एक बेंच पड़ी थी। वह थककर उसी पर बैठ गया।

थोड़ी देरमें एक आदमीने पूछा—क्या लाऊँ?

रमेशदत्तने कहा—शरबत।

वह हँसने लगा। रमेशदत्तको उसकी हँसीपर कुछ आश्चर्य हुआ, परन्तु वह अपनी ही चिन्तामें लीन था। उसने कुछ ख्याल न किया क्षण-भरके बाद एक गिलास लाकर उस आदमीने रमेशके सामने रख दिया। गिलास हाथमें लेते ही वह समझ गया कि यह शराब है और वह शराबकी दूकानपर बैठा हुआ है।

पहले तो उसे घृणा हुई। फिर वह सोचने लगा, ठीक हुआ। भगवान्‌ने मुझे ठीक रास्तेपर लगा दिया। मुझे अब डर किसका? समाजने मेरा तिरस्कार किया। मैं क्यों न समाजका तिरस्कार करूँ? समाजकी झूठी प्रतिष्ठाके लिए मैं चिन्ता क्यों करूँ? मैं नीच सही, पर संसारमें जो लोग ऊँचे कहलाते हैं वे तो मुझसे भी अधम हैं। मैंने अपने चरित्रकी रक्षा की, पर उससे लाभ क्या हुआ? चरित्रवान् रहनेपर भी मुझे अपनी माताका कलङ्क सहना पड़ेगा, पर दुश्चरित्रके लिए तो कलङ्क कोई बात ही नहीं।

इसके आगे रमेशने कुछ विचार नहीं किया। उसने एक ही साँसमें गिलास खाली कर दिया, फिर दूसरा गिलास लानेकी आज्ञा दी। क्षण-भरमें शराबके नशेने उसे दूसरा आदमी बना दिया। मूल्य चुकानेके बाद वह रात-भर उसी दूकानमें पड़ा रहा। दूसरे दिनसे उसका दूसरा जीवन शुरू हुआ।

बोर्डिंग हाउसके लड़कोंने सोचा था कि रमेशदत्त शायद कालेज छोड़कर चला जायगा। परन्तु, यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि

रमेशदत्त उसी तरह अपना सिर ऊँचा किये कालेज चला आ रहा है। अब उसके चेहरेपर सुशीलताका वह भाव नहीं था। वह ऐसा भीषण हो रहा था कि किसीको कुछ कहनेकी हिम्मत न पड़ी। और दिन वह सबसे पीछे बैठता था, परंतु आज वह प्रोफेसरके सामनेकी बेंचपर बैठा। शराबने, जान पड़ता है, उसकी सोती हुई बुद्धिको जाग्रत कर दिया। क्योंकि आज प्रोफेसरसे उसने ऐसे प्रश्न पूछे कि स्वयं प्रोफेसर चकित हो गया।

प्रतिदिन यही हाल होता था। रात-भर रमेश शराबके नशेमें बे-सुध पड़ा रहता और सुबह वह अपना पाठ तैयार कर कालेजमें आ जाता। जो विद्यार्थी पहले सबसे अधिक तेज समझे जाते थे उन्हें अब रमेशसे अपना पराभव स्वीकार करना पड़ा। जब परीक्षा हुई तब रमेशका नम्बर सबसे ऊँचा रहा।

रमेशको अब न भय था, न चिन्ता थी। वह निश्चिन्त होकर सब काम करता था। उसके पिताने उसके लिए बैङ्कमें अच्छी रकम जमा कर दी थी। परन्तु, दो ही वर्षोंमें वह सब रकम नष्ट हो गई।

जब रमेशके पास एक भी पैसा न रहा तब उसने बिना किसी घबराहटके बङ्गाल बैङ्कमें नौकरी कर ली। अपने काममें वह बड़ा तेज था, इसलिए थोड़े ही दिनोंमें उसकी अच्छी उन्नति हो गई। वह चार सौ रुपये मासिक फटकारने लगा। परन्तु, फिर उसकी शक्ति क्षीण होने लगी। शराबने धीरे धीरे उसके शरीरको जर्जर कर डाला। चित्तके उन्मादसे उसमें जो विलक्षण बुद्धि जाग्रत हुई थी वह घटने लगी। ज्यों ज्यों वह अपनी क्षीणताका अनुभव करता गया त्यों त्यों उसने शराबकी मात्रा बढ़ाना शुरू किया। परन्तु, अत्यधिक मात्रामें शराब पीनेसे भी उसे कुछ लाभ नहीं हुआ। अब

सके ? एकाएक पूर्व-स्मृतिकी तरह रमेशकी आत्म-शक्ति कुछ जाग्रत हुई। वह बाजकी तरह हॉवर्डपर झपट पड़ा। हॉवर्ड जानता नहीं था कि उसपर इस तरह आक्रमण होगा। इसलिए वह गिर पड़ा। लोनी भी भाग खड़ी हुई। परन्तु, इधर हॉवर्डने रमेशकी दुर्दशा कर दी। जब रमेश घरको लौटा तब वह बे-दम हो रहा था। वह चुप-चाप एक कोनेमें लेट गया। स्वप्नमें उसने देखा कि एक देवी स्वर्गसे उतरी और उसकी देहपर धीरे धीरे हाथ फेरकर चली गई।

दूसरे दिन रमेशने उठकर मन ही मन कुछ प्रतिज्ञा की। धीरे धीरे वह शराबकी मात्रा घटाने लगा। कोई कुछ जान नहीं सका। प्रतिदिन वह खूब तड़के उठकर नदीके किनारे जाता और वहाँ दो घण्टे तक चुपचाप बैठा बैठा किसीका ध्यान किया करता। इसके बाद वह दूकानका काम देखता। यद्यपि अब वह शराब कम पीने लगा था तथापि दूसरे लोगोंके सामने वह यही भाव प्रकट करता कि मानो उसने खूब शराब पी हो।

हॉवर्डकी तो वह बड़ी खुशामद करता। हॉवर्ड जितना ही अधिक उसका अपमान करता उतना ही अधिक वह गिड़गिड़ाता। कहता, साहब, शराबके नशेमें खयाल नहीं रहता। हॉवर्डके सामने वह उसी तरह जानवरोंकी नकल करता, परन्तु, उसके चेहरेका रंग धीरे धीरे बदलने लगा। किसी शराबीने उसके इस परिवर्तनको नहीं देखा, पर लोनीने ताड़ लिया। एक दिन सन्ध्याके समय लोनीसे अचानक उसकी भेंट हो गई। लोनीने कहा—रमेश, मैं नहीं कह सकती कि तुमने मेरा कितना उपकार किया है। मुझे अब यह देखकर खुशी होती है कि तुमने अब अपने मनुष्यत्वको पहचाना है।

रमेशने सिर झुकाकर उत्तर दिया—आप क्षमा करें, परन्तु, मेरी एक प्रार्थना है। यदि अब फिर कभी आपको किसी तरहकी

सहायताकी आवश्यकता हो तो आप मेरा स्मरण करें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अब कोई आपको अपमानित कर सुखसे घर नहीं लौटेगा।

दो महीने बीत गये। एक दिन रमेश शराबीका स्वाँग बनाये झूठ-मूठ बेसुध पड़ा हुआ था। इतनेमें हॉवर्ड अपने एक साथीके साथ आया। उसने पहले तो रमेशको एक ठोकर मारी, पर रमेश चुप पड़ा ही रहा। हॉवर्डने कहा—हरामज़ादा बेसुध पड़ा है। अच्छा तो मेरी स्कीम सुनो। लोनी यों हाथमें आनेकी नहीं है। कल रविवार है। वह चर्च जरूर जायगी। लौटते समय नदीकी ओरसे आती है। वहीं उसे पकड़ना होगा। हम तुम दोनों चलेंगे, तैयार हो?

उसके साथीने कहा—बात तो ठीक है, पर स्मिथने बखेड़ा उठाया तो?

हॉवर्ड—स्मिथ भी कोई आदमी है? रुपये उसके हाथमें दो, वह कुछ बोलनेका नहीं।

हॉवर्डका साथी—अच्छा, तब मैं तैयार हूँ।

थोड़ी देरमें स्मिथ आया। तीनोंने मिलकर शराब पी और फिर सब चले गये। रमेशका हृदय धड़कने लगा। वह लोनीके पास गया, देखा, लोनी उदास बैठी हुई है। रमेशको देखकर उसने पूछा—क्या है?

रमेशने जो कुछ सुना था सब कह सुनाया। लोनीने कहा—यह कोई नई बात नहीं है। मैं इसकी आशङ्का पहलेहीसे कर रही थी। यह कहकर वह रोने लगी।

रमेशने लोनीका हाथ पकड़कर कहा—लोनी, मुझे क्षमा करो। मेरी धृष्टतापर ध्यान मत दो। मैं पशुसे भी अधम हो गया था। तुम्हींने मुझे जीवन-दान दिया है। मेरे लिए तुम स्वर्गकी देवी हो। कल मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। कल तुम मेरी शक्ति देख लेना और फिर यदि

तुमको मुझपर विश्वास हो तो मैं आजीवन तुम्हारी रक्षाका भार लेनेको तैयार हूँ। तुमने स्मिथसे शायद मेरे जीवनकी पाप-कथा सुनी होगी पर मेरे जीवनका जो उज्ज्वल अंश है उसे तुमने नहीं देखा है।

लोनीने गद्गद स्वरसे कहा—रमेश, मैं तुमपर विश्वास करती हूँ।

दूसरे दिन नदीके किनारे रमेश चुपचाप जा बैठा और अपने साथीकी प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देरमें लोनी आती हुई दिखाई पड़ी। ज्यों ही वह नदीके किनारे पहुँची त्यों ही अचानक हॉवर्ड और उसके साथी आ टूटे। हॉवर्डने लोनीको पकड़नेके लिए हाथ बढ़ाया ही था कि किसीने पीछेसे उसको धक्का देकर नीचे गिरा दिया। हॉवर्डने उठकर देखा तो रमेश। 'यू डॉग' कहकर हॉवर्ड उसकी ओर झपटा, परन्तु रमेशने उसको पकड़कर नीचे दबा लिया। तब उसका साथी रमेशपर झपटा, परन्तु, रमेशने उसको भी नीचे गिरा दिया और दोनोंकी मरम्मत एक साथ ही की। उस समय रमेशमें दैवी शक्ति आ गई थी। जब हॉवर्ड और उसके साथी बे-दम हो गये तब रमेशने उनसे कहा—यदि फिर कभी तुम्हारी इच्छा मुझसे लड़नेकी हो तो मुझसे मिलना।

दूसरे दिन लोनीका विवाह रमेशके साथ हो गया।

इतना कहकर रमाशङ्करने मुझसे पूछा—देखिए, गाड़ी आ गई पर बतलाइए तो सही, कहानी कैसी है?

मैंने कहा—कहानी तो अच्छी है, पर मैं तुम्हारा हाल-चाल जानना चाहता था, मेरी वह उत्सुकता रह गई।

रमाशङ्करने कहा—मैंने ही लोनीसे विवाह किया है।